Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वितस्ता

संपादिका | प्रोफ़ेसर ज़ौहरा अफ़ज़ल

No. 1
Vol. 37

हिंदी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय
श्रीनगर - 190006

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वितस्ता

संपादिका
प्रो0 ज़ौहरा अफ़ज़ल

G.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu.
Acc. No... 1530
Dated... 24.8.12

हिंदी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय
(राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद द्वारा 'ए' ग्रेड)
श्रीनगर – 190006

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सम्पादक मण्डल :

- डॉ. दिलशाद जीलानी
- डॉ. रूबी ज़ुत्शी
- डॉ. ज़ाहिदा जबीन
- विजय सिंह (अनुसंधित्सु)

परामर्श मण्डल

प्रो० विनोद कुमार तनेजा, अमृतसर

प्रो० सादिक अली,
पूर्व अध्यक्ष, उर्दू अकादमी, दिल्ली

प्रो० असगर वज़ाहत
हिन्दी विभाग
जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय

प्रो० सुधाकर सिंह
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
हिन्दू विश्वविद्यालय

प्रो० मोहन
निदेशक – केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा

प्रो० कट्टीमनी
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
मौलाना आज़ाद, नेशनल उर्दू विश्वविद्यालय

संस्करण : 2012

प्रिन्टर्स – महक प्रेस, श्रीनगर
फोन् : 09419063159

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अनुक्रमणिका

1.	साठोतरी हिन्दी गज़ल और मानवाधिकार विनोद कुमार तनेजा	1–10
2.	साहित्य में अनुवाद की भूमिका प्रो. ज़ोहरा अफ़ज़ल	11–22
3.	''नारी के विविध रूपों को चित्रित करता राजी सेठ का कथा–साहित्य'' डॉ. आशा अनेजा	23–38
4.	रामदरश मिश्र की भाषा एवं शैली डॉ. अंजली उपाध्याय	39–50
5.	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की मानवी–दृष्टि डॉ. अर्चना आर्य	51–60
6.	नागर जी के उपन्यासों की नारियाँ: मनोवैज्ञानिक संदर्भ डॉ. (श्रीमती) सविता मिश्र	61–76
7.	छंद–छंद पर कुंकम ''दोहा'' डॉ. भूपेन्द्र हरदेनियाँ	77–88
8.	अज्ञेय के काव्य में 'असाध्य वीणा' का सन्दर्भ डॉ. समना शर्मा	89–102
9.	बच्चन के लोकप्रिय गीतों में समांतरता डॉ. अमिता शर्मा	103–112

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

10. बंजारा जाति की सामाजिक संरचना — 113–130
डॉ. विजयकुमार वेदालंकार

11. आदिवासी गरासिया साहित्य के गीत — 131–142
हरदीप सिंह

12. स्वतंत्रोत्तर कश्मीर नाटक — 143–148
रूबो जुत्शी

13. कबीर की दार्शनिकता — 149--154
डॉ. मेराज अहमद

14. मीरा कांत के नाटक काली बर्फ में चित्रित विस्थापन की समस्या — 155--162
विजय सिंह

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साठोतरी हिन्दी गज़ल और मानवाधिकार

विनोद कुमार तनेजा

मानव–कल्याण के बहुआयामी क्षेत्र में जिस विचार धारा को सर्वधिक प्रश्रय मानवतावादी विचारधाराओं को होता है। इस रूप में अपनी शक्ति और सामर्थ्य से समाज के विकास में सहायक बनता है। मानव की मानवीय चेतना उसके श्रम पर आधारित है। इसके लिए उसे जिस रूप कें कार्य करना होता है उसमें उसे अपने अस्तित्व को सुराक्षित रखने के लिए दूंसरों के साथ समझौता भी करना पडता है। यही एक दूसरे के साथ परस्पर मिलकर चलता ही मानववादी विचार धारा का मूल है। इसके जहा उसके कुछ कर्तव्य होते है जो नैतिकता के आधार पर उसे मानने हीते है वही उसके कुछ अधिकार भी बनतें है जिनकी उपेक्षा वह समाज के विभिन्न क्षेत्रों में करता है।[1] यही अधिकार जो उसे लिंग, वर्ग, जाति, व्यवसाय और सामाजिक या आर्थिक स्थिति के भिन्न होने पर भी मानव होने के नाते प्राप्त होते है मानवधिकार कहलाते है। कहा गया है

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''मानवाधिकार से तात्पर्य व्यक्ति के जीवन, स्वतन्त्रता, समानता एवं गरिमा से सम्बन्धित उन अधिकारों से है जो सामाजिक विधि द्वारा उसे प्राप्त होते है''[2] इन मानवाधिकारों का सम्बन्ध मानवीय गरीमा से बहुत गहरे से जुडा हुआ हैं। प्रत्येक सामाजिक यदि अपने अपने कर्तव्य से जुड कर नैतिक मर्यादाओं को समझते हुए कर्मधय पर अग्रसर होता है तो उसे यह अधिकार स्वतः प्राप्त हो जाते है।

साहित्य मानव के भावों और विचारों की समष्दि है। साहित्य में सामाजिक प्रभाव का प्रतिफलन दिखाई देता है। समाज और साहित्य का अनन्य सम्बन्ध उनके निरन्तर प्रवाह की गति का बोधक होता है। इसी कारण युगों की विशिष्टता साहित्य में प्रतिबिंब्ति होती है समाज की स्वस्थ और मुलक स्थिति का प्रभाव साहित्य पर पडता हो इस प्रभाव का यथा रूप साहित्य के मानव को उसकी वास्तविकता से परिचित कराता है, साथ ही उस चित्रण के मध्य लेखक–चितर ही स्वस्थ समाज क्रे प्रति चित्रण भी उसमें झलकती है क्योंकि यदि ''रचना के स्वस्थ हष्टिकोण का अमाव होगा''[3] तो उसमें जीवन प्रसारक तत्व नहीं होंगे। इस रूप में साहित्य वह दर्पण बनता है जिसमें मानव–समाज अपनी संरीर्णता को स्वस्थता प्रदान कर सकता है।

हिन्दी साहित्य की सुदीर्ध परम्परा में युग बोध की गहरी छाप दिखाई देती है अन्धान्ध विधाओं के समान आधुनिक काव्य विधा जो भारतीय साहित्य की सुदीर्ध परम्परा में फारसी से उर्दू में आई और पिछली सदी के आरार्ध में हिन्दी में भी अंगीकार हुई उसमें समशलीनता का चित्र वही सजगता व सजीवता से उकेरा गया है।

गज़ल मूलर्यः अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है ''प्रमिका से वार्तालाप''। फारसी और फिर उर्दू में यह एक कविता विशेष है जिसमें एक ही रदीक और काफिए में पूरे 11 शेर होते है। हर शेर का

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मज्मून अलग होता है। पहला शेर 'मत्ला' कहलाता है। जिसके दोनों मिस्रे सानुप्रास होते है। उौर अन्तिम शेर मक्ता होता है, जिसमें शायर अपना उपनाम लगाता है।[4] इस रूप में यह विद्या प्रमाभिव्यक्ति का माध्यम है। प्रेम लौकिक और परालौकिक दोनों रूपों में हो सकता है। सरल और मीठी बोली इस विधा का गुण है। गज़ल ने वक्त के साथ बहुत कुछ देखा है। प्रेम के अलग–अलग रूप इसने बयान किए है। मनुष्य–मनुष्य के प्रेम के साथ इसके पारिवारिक उपदेश प्रेम के चित्र भी उकेरे गए है। प्रेमाधिक्य का भाव प्रधान होने के कारण कोमल भावों को अभिव्यक्त करने की सशक्त विधा के रूप में साहित्य में स्वीकार की गई।

गज़ल के लिए भाषा में सरलता, सहजता, सरसता इसी प्रभावोत्पादकता में सहायक होते है। इसकी भाषा मुहावरे दार होती है, एवं कहावतों का प्रयोग इसकी रोचकता में वुद्धि करता है।

फारसी साहित्य में गज़ल का इतिहास दसवी शती में सौदवी से शुरू होता है आगे चलकर शेख सादी और अमीर खुसरो का नाम भी इनसे जुडता है। अमीर खुसरो के बाद हाफिज़ शीराजी और इसविधा के उंन्नामक रहे।

उर्दू में इस विद्या का बीजाकुर दविखनी में 1668 ई. में और गाबदमैन्में शमसुद्धीन वली से माना जाता है। आगे चल कर सिराज, फाइज़, खाने, आरजू आदि ने इस विद्या के दखिन से आर में दिल्ली और लखनऊ की ओर लाया। दिल्ली क्षेत्र में इसका विकास हुआ और मिर्ज़ा मुहमद रफी सौंदा, मीर तकी मीर, ख्वाजा मीर दर्द, सैयद मुहमद मीर नजींर, अकबराआबादी, इंशा, अल्लाह खां, गालिब, मोमिन, शेख इब्राहीम, बहादुरशाह ज़फर, नवाब मिर्जा खां, दाग देहलवी आदि ने इसे आगे बढाकर। फिर मोलाना मुहमद हुसैन, आजाद, हाली, अकबर इलाहाबादी, ब्रजनाथ चक़ाब, डॉ. इकबाल, जिगर मुरादाबादी, जोश, फिराक गोरखपूरी, फ़ैज अहमद फेज,

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बशरी बद्र आदि उर्दू गजल में उभरते हुए दिखाई दिए।

अमीर खुसरो से ही गजल विद्या का हिन्दी में परिचय मिलता है फिर हमन को इश्क मस्ताना' कहने वाले कबीर में भी इसका रूप दिखाई देता है। प्यारे लाल शादी गिरिधर दास, प्रेमधन प्रतापनारायण, मिश्र लाला भगवान दीन, हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त रामप्रसाद बिस्मिल आदि के नाम इसविधा से जुडते है। यह विद्या किसि न किसी तरह रमेश्वर अंचल, हरिकृष्णा प्रेमी प्रेम बलबीर सिंह त्रिलोचन शास्त्री आदि कवियों की रचनाओं में दिखाई देती है।[8]

आधुनिक काव्य में दुष्यन्त कुमार के साथ यह विद्या नई सजधत्र के साथ हिन्दी में प्रस्तुत हुई है। गापालदाम नीरत्र सूर्यदास गुप्त कुंवर बैचेन, रामावतार त्यागी बाल स्वरूप राही शैर जंम गर्ग जहीर कुरैशी पुरूषोत्तम प्रतीक, ज्ञान प्रकाश विवेक, बेकल उत्साही, रामकुमार कृषक, रोहितारव अस्थान आदि कई नाम आते हैं।

इन ग़ज़ल कारों ने युगीन सामाजिकर परिवेश को जिस प्रकार से देखा व भोगा है। उसके हर्ष–विषार, सुख–दुख, आशा–निराशा आदि सभी के कीज गुजरते मानव की मानवता को पहचानने का प्रयास किया है और उस पहचान को अपनी गज़लों मे वाणी प्रदान की है।

सन 1947 ई में स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भारतीय सामाजिक जीवन की अपनी कुछ मान्यताऐं और जीवन मुल्य और सन 1947 के भातर विभाजन ने इन मुल्यों की आधार शिला को हिला दिया और फिर सन 1960 के बाद देश में गरीबी, बेकारी महंगाई, भ्रष्टाचार, आर्थिक विषमता साम्प्रदायिकता अलगाववाद और आतंकवाद आदि जिन समस्याओं को मानव समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया उसबे जीवन मुल्यो में बहुत बडा बदलाव उपस्थित कर दिया।

सन 1960 के बाद भारतीय समाज में पीढियों का संधर्ष

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अधिक गहरे रूप में उभरा, नई पीढी ने प्रायः पुरानी पीढी को नकारना शरू कर दिया। राजनीति ने समाजनीति के साथ जुडकर कर्तव्य बोध के स्थान पर अधिकार बोध को प्रमुखता प्रदान करदी राजनैतिक हथकंडों ने समाज मेमानव को 'मानव' नहीं कठपुतली बना कर नचाना शुरू कर दिया। समाज की मान्यताओं से मोहभग करवाती पूंजीवादी व्यवस्था के आम आदमी को दयनीय बना दिया। ऐसे समय मं 'त्रासद' को बेनकाब कर जनमानस में आत्मविश्वास जगाने के लिए, उसमें वास्तविक कर्तव्य बोद्य के अधिकारों के साथ जोडने के लिए उन गजल कारों ने सामाजिक यथार्थ को गहराई तक पहचानते हुए मानव धिवारों के प्रति सामाजिक को जागरूक किया है।

आज के समाज के मानवीय मूल्यो के विघटन को पहचानते हुए डॉ. कुंअर बैचेन कहते है।

हर इक सडक पे हो रहा इंसानियत का कत्ल

पूरे शहर में फिर भी कोई सनसनी नहीं[9]

इस तरह आपने मानवता के दायित्व बोद्य का परिचय भावक समाज को कराया है। उषायादव कहती है।

आदमीयत लिखी वेद कुरआन में

उससें वाकिफ नहीं किंतु इंसान है।

इस प्रकार समाज में मानवता के प्रति जागरूकता तभी आएगी जब वास्तवकिता का परिचय सामजिक का मिलेगा।

आज बडे बडे शहरों की ओर रोजीरोटी के लिए लोग शहरों की ओर भाग रहे हैं पर ये बडे शहर महानगर मानवीय संवेदना से दूर हो चुके हैं। इंसान नहीं मशीन ही सब कुछ हैं। इसी बजह से परस्पर प्रेम और सद्भाव इनके लिए किताबी बातें है। हर इंसान यहां दोहरी जिन्दगी ही रहा है। जहीर कुरेशी के शब्दों में

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह महानगरीय जीवन का करिशमा हैं

भूल बैठे हम सुखी परिवार की भाषा।[11]

आत्मकेन्द्री जीवन के बारे में दुष्यन्त कुमार कहते हैं

इस शहर में वो कोई बारात हो या वारदात

अब किसी भी बात पर खुलती नहीं हैं खिड़कियां।[12]

महानगरीय परिवार की स्वतन्त्रता, स्वच्छदता बन चुकी है। आधुनिक सथ्यता के नाम पर कलब संस्कृति हावी हो चुकी है। उसकी विकृतियां और विद्रूपताएं भी हमें मानवीय अधिकारों के प्रति जागरूक करती है।

वर्तमान युग के सामाजिक मूल्यों का विधटन, भौतिकता प्रधान वातावरण, महानगरीय जीवन की विद्रूपता में व्यक्ति का जीवन सुरक्षित नहीं। साम्प्रदायिक सद्भाव का अभाव, राजनैतिक स्वार्थ की स्थिति ने जो त्रासदी लादी है उससे तो मानवाधिकारों की खोज मुश्किल हो गई है। रवीन्द्र प्रयर के अनुसार

हर चेहरें पर चीख थमी है, दहशत का सन्नाटा है

हर सीने में चुभा हुआ सा कोई खंजर लगता है।[13]

जिस संस्कृति में 'यत्र नार्यस्वु पूज्यन्ते समत्रे तम देवत्य' की मान्यता थी, वहां विडम्बना में नारी की स्थिति शोचनीय है। अनमेल विवाह, दहेज, भूणहत्या आदि की विडम्बना ने इस युग में मानवीय मूल्यों में जो गिरावट लाई है उससे हम भलीं भांति परिचित हैं। मानव मानव न रह कर पशु तुल्य हो गया है। जहीर कुरैशी कहते हैं

एक औरत अकेली मिली जिस जगह मर्द होने लगे जंगली जानवर।[14]

साथ ही आज के समाज में जिस तरह मिथ्याचरण आम बात हो गई है। झूठ, फरेब, बेईमानी ने मनुष्य के मूल्यों में गिरावट लाई है। स्वार्थ सबसे आगे है बेदिल हायरसी के अनुसार

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'ये दुनिया वास्तव में छल फरेबों का पिटारा है किसने हंस कर लूटा है, किसी ने छुप के मारा है।[15]

आर्थिक पक्ष की प्रबलता ने छल कपट, घोखाधड़ी को इतना महत्व दिया है कि बडे–बडे लोग भी इसकी लपेट में आ गए हैं। अवध किशोर सक्सेना ने कहा है।

नैतिकता का पतन हो रहा, अनुशासन का ढांचा ढीला, काली चोर बाज़ारी करता, बडो बडो का कुटुम कबीला।

गोपालदास नीरज तो कथनी–करनी के अन्तर को स्पष्ट शब्दों में कहते हैं

बदन पै जिसकी शराफत का पैरहन देखा, वो आदमी भी यहां हमने बदचलन देखा जुबां है और, बयां और, उसका मतलब और अजीब आज की दुनिया का व्याकरण देखा।[17]

समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार ने मानवीय मूल्यों को ताक पर रख दिया है। देश में आज आदमी के लिए योजनाऐं बनती है पर व्यवस्था की पुष्टता के कारण।

यहां तक आते–आते सूख जाती हैं नदियां।

मुझे मालूम है पानी कहां ठहरा हुआ होगा।[18]

दृष्यन्त कुमार के ये शब्द स्थिति को पूरी तरह स्पष्ट कर देते हैं।

वर्तमान समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार ने जिस प्रकार वातावरण को दूषित कर रखा है उससे निशिचत रूप से समाज का भला करने वाला साहित्यकार मानवाधिकारों की याद में रो–रो कर सभी को सावधान तथा जागरक करने का पप्रयास करता है। आज ज्ञान, प्रतिभा, विद्वता के सीन पर भई–भतीजवाद, जान–पहचान के महत्व ने सभी को स्तब्ध कर रखा है।

सन् 1960 के बाद विशेषकर 80 के दशक में हमारे देश में

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अलगाव से जुडी आतंकवादी दृष्प्रवृतियों ने मानवाधिकारों का कस कर हनन किया है। देश की अखण्डता को अलगाववादी स्वार्थ ने बहुत ठेस पहुंचाई है। क्षेत्रीयता को लेकर राजनीति और उसके लिए जन–बल का प्रयोग 'सुजलाम सुफलाम' को घायल कर देता है। ऐसी स्थिति में अश्विनी कुमार पाण्डेय कहता है।–

''सभी गुलशन गुलाबों के निरा बंजर नज़र आते। दुवाओं को उठे हाथों में जब खंजर नज़र आते। कहीं चीखों का मजमा है, कही मरघट का सन्नाटा। कहीं पर खौफ के डूबे हुए मंजर नज़र आते।''[19]

ज्ञान प्रकाश विवेक के अनुसार–

न स्वागत, न सत्कार कफर्यू लगा है,

सभी बंद हैं द्वार, कफर्यू लगा है।[20]

इस अलगाववाद और आतंकवाद के बीच एक और चीज़ है 'नया फेशन', जिसने मानवाधिकारों का जम कर हनन किया है। परार्इ संस्कृति को अपना कर अपने को भूलते हुए जिस प्रकार की स्थिति उत्पन हो गई है, उसका परिणाम बहुत भयंकर होगा। इसी से आम आदमी की पीड़ा का अनुभव गज़ल कारों ने किया है। यहां कवि ने अपने दायित्व को समझते हुए जिस बोध को प्रस्तुत किया है, उससे स्पष्ट होता है कि आम आदमी की पीड़ा ने उसे मानवाधिकारों के प्रति सचेत किया है। समाज में फेली नफरत, बिगड़ती स्थिति उसे सचेत करती है कि उसे जागरूक प्रहरी के समान मानव को उसकी वास्तविकता से परिचित कराते हुए उसे काव्य द्वारा मानवाधिकारों का बोध कराना चाहिए, नहीं तो राम चरण यादव का कहना सत्य होगा। –

'मौका मिलते ही लोग मैदान छोड़ देंगें,

बाद में बनावटी झूठे बयान छोड़ देंगें'[21]

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संदर्भः—

1. धर्मपाल मैनी, भारतीय जीवन मूल्य (गुड़गावँः भारतीय संस्कृति संस्थान, 2006), पृ. 12
2. अनीश भसीन, 'मानवाधिकारों का उद्‌भव एवं विकास' प्रतियोगिता दर्पण जनवरी, 2011, पृ. 1077
3. अंजु लता गौड़, हिन्दी एकांकी में जीवन मूल्य मेरठः शलभ प्रकाशन, 1994, पृ. 43
4. उर्दू हिन्दी शब्दकोश मुहम्मद मुस्तफा खान (लखनऊ उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, 1982), पृ. 177
5. हिन्दी साहित्य कोश (भाग 1) धीरेन्द्र वर्मा (वाराणसी ज्ञानमण्डल, 1985), पृ. 216

6,7. मधु खराटे साठोत्तरी हिन्दी गजल (कानपुरः विद्या प्रकाशन, 2002), पृ. 22, 30–36

8. हिन्दी साहित्य कोश (पूवेक्ति), पृ. 217
9. कुंवर बेच्चैन, शामियाने काँच के (गाज़ियाबादः प्रगति प्रकाशन, 1983), पृ. 86
10. रोहिताश अस्थाना (सम्पा.) बहुरंगी हिन्दी गज़ले (हिन्दीः सुनील साहित्य सदन, 1993), पृ. 36
11. ज़हीर कुरेशी चाँदनी का दुःख (दिल्लीः प्राग प्रकाशन, 1986), पृ. 22
12. दुष्यंत प्रकाशन, 1975, पृ. 21
13. रवीन्द्र भ्रमर, धूप दिखाए आरसी (इलाहाबादः सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, 1991), पृ. 51
14. जहीर कुरेशी चाँदनी का दुःख (पूवेक्ति) पृ. 73

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

15. गिरिराज शरण अग्रवाल, हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ गजल (बिजनौरः दिल्ली साहित्य निकेतन, 1982), पृ. 118
16. अवध किशोर सक्सेना, वातावरण खराब हो चला (कानपुरः अराधना, 1991), पृ. 17

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साहित्य में अनुवाद की भूमिका

प्रो. ज़ोहरा अफ़ज़ल

वर्तमान युग वैश्वीकरण का युग है। जनसंचार के माध्यम तेज़ी से बढ़ रहे हैं और नई औद्योगिक क्रान्ति के सूत्रपात से संसार एक 'ग्लोबल विलेज' बन गया है। भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में अनुवाद ने आदान–प्रदान के द्वारा भौगोलिक और भाषायी बंधन तोड़ कर मानव–एकता तथा विश्वमैत्री का मार्ग प्रशास्त किया है। यह एक आईना है, जिसमें हम दूसरी भाषाओं के ग्रन्थों का प्रतिबिम्ब देख सकते हैं। यह एक ऐसा सतरंगी इन्द्रधनुष है जो प्रत्येक भाषा के साहित्याकाश में रोशन होकर सबको सुखद ज्ञानालोक प्रदान करता है। दो भाषाओं के साहित्य के मध्य यह एक सेतु का काम करता है। विश्व–साहित्य पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि अनुवाद की परम्परा शताब्दियों पुरानी है। लैटिन, जर्मन, फ्रेंच, आदि भाषाओं के साहित्य का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया गया। अरबी–ग्रन्थों का, संस्कृत के ग्रन्थों का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया गया; तभी पश्चिम में नवीन चिकित्सा–पद्धति का विकास हुआ जिसे हम यूनानी, आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति के नाम से जानते हैं। संस्कृत के प्राचीन

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ग्रन्थों–ऋग्वेद आदि का जर्मन और अंग्रेज़ी भाषाओं में रूपांतरण किया गया। तभी प्राच्य–विद्या या इंडालोजी का ज्ञान पश्चिमी देशों को हुआ। यदि विलियम जोन्स संस्कृत–नाटक 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' का अंग्रेज़ी में अनुवाद न करते तो कालिदास की अप्रतिम काव्य–प्रतिभा से पश्चिम अनभिज्ञ रहता। अनुवाद की उपयोगिता बहुमुखी है। भाषावृद्धि, साहित्य का आदान–प्रदान, व्यापक जीवन–अनुभूति, नई विधाओं की रचना, अभिव्यंजना शैली, भाषाध्ययन की प्रेरणा, भावात्मक एकता को प्रश्रय अनुवाद–कला से ही मिलता है। अनुवाद कलौ, विज्ञान है, अनुसृजन है। अनुवाद के कई एक समानार्थी शब्द भी प्रचलित हैं– जैसे; भाषांतर, रूपांतर, तर्जुमा, उल्था।

अनुवाद शब्द की व्युत्पति 'वद' धातु से हुई है। जिसका अर्थ है कहना, बोलना। 'वद' धातु में 'घञ' प्रत्यय लगाने से 'वाद' शब्द का निर्माण होता है। उसमें 'अनु' उपसर्ग लगाने से अनुवाद शब्द बनता है। अनुवाद का मूलार्थ हैं–पुनः कथन, किसी के कहने के बाद कहना। अनुवाद पुनरुक्ति नहीं, पुनरुक्ति निरर्थक होती है; अनुवाद सार्थक होता है। 1

संसकृत कोश 'शब्दार्थ चिंतामणि' में अनुवाद शब्द का अर्थ इस तरह से प्रकट किया गया है–

प्राप्तस्य पुनः कथने

या

ज्ञातार्थस्य प्रतिपादने 2

'ऐतरेय ब्राह्मण' में अनुवाद शब्द को पुनः कथन के अर्थ में प्रयोग किया गया है।3 'वृहदारण्यक उपनिषद्' में 'अनुवदति' शब्दि दोहराने के लिए प्रयुक्त हुआ है।4 पाणिनि ने अपनी 'अष्टाध्यायी' (2. 4.3) में अनुवाद को इस रूप मं अंकित किया है– 'अनुवादे

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चरणानाम्'। इस प्रकार संस्कृत आचार्यों ने अनुवाद को पुनः कथन, दुहराना, सार्थक आवृति के रूप में प्रयुक्त किया है।

हिन्दी ने भी अनुवाद को इसी रूप में स्वीकार किया गया है। 'मानक हिन्दी कोश' (प्रथम खण्ड), (पृ. 113) में अनुवाद को कही हुई बात को फिर से कहना या दोहराना माना गया है और इसके लिए भाषांतर, उल्था, तर्जुमा शब्द समानार्थक माने हैं। 5

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने अनुवाद के लिए उल्था, तर्जुमा, भाषांतर (वृहत पर्यायवाची कोश, सं. 1962, पृ. 307) शब्द का प्रयोग करते हुए कहा है– ''एक भाषा में व्यक्त विचारों को यथासम्भव समान तथा सहज अभिव्यक्ति द्वारा दूसरी भाषा में व्यक्त करने का प्रयास अनुवाद है। डॉ. जी. गोपीनाथन् ने ''अनुवादः सोच और संस्कार'' में शॉपन हावर के मत को सही माना है कि 'अनुवाद की प्रक्रिया की तुलना आत्मा के परकाया–प्रवेश की प्रक्रिया से की है।

अनुवाद के लिए अंगेज़ी में 'ट्रांसलेशन' शब्द का प्रयोग किया जाता है। ट्रांसलेशन, लौटिन शब्द 'ट्रांस' और 'लेशन' के संयोग से बना है; जिसका अर्थ है– पार ले जाना।

अर्थात् एक भाषा से दूसरी भाषा में ले जाना। वेबस्टर्स डिक्शनरी में 'ट्रांसलेट' शब्द का अर्थ है– एक भाषा से दूसरी भाषा में बदलना। विशेष रूप से ट्रांसलेशन शब्द का अर्थ है किसी साहित्यिक रचना को दूसरी भाषा में बदलना।

1. ए. एच. स्मिथ का कहना है कि अर्थ को बनाए रखते हुए अन्य भाषा में अन्तरण अनुवाद है।

2. भाषाविद् न्यूमार्ग का कहना है – अनुवाद एक शिल्प है जिसमें एक भाषा में लिखित संदेश के स्थान पर दूसरी भाषा में उसी संदेश को प्रस्तुत किया जाता है।

3. अन्य विद्वान नाइडा का मत है कि मूल भाषा के संदेश के

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समतुल्य संदेश को लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत करने की प्रक्रिया को अनुवाद कहते हैं। संदेशों की समतुल्यता पहले अर्थ और फिर शैली की दृष्टि से निकटतम और स्वाभाविक होती है।

आज का युग अनुवाद का युग है। चिकित्सा, औद्योगिक तकनीकी, विधि, वाणिज्य, साहित्य, संस्कृति के आदान–प्रदान से जीवन–मूल्यों में परिवर्तन आ रहा है। जन संचार के माध्यमों ने मानव–कल्पना को यथार्थ का रूप प्रदान किया है। चाहे विकसित देश हों या विकासशील देश हों–सभी जगह अनुवाद ने एक कुशल साहित्यिक तथा सांस्कृतिक राजदूत का काम किया है। उसने वैज्ञानिक, तकनीकी क्षेत्र से गहरा सम्बन्ध जोड़ कर मानव–जीवन को उन्नत बनाने का प्रयास किया है। पहले अनुवादक को मूल लेखक के सामने हीन, छोटा समझा जाता था। उसके काम की कोई प्रशंसा नहीं की जाती थी लेकिन अब उसे मूल लेखक के समान महत्व दिया जाता है, उसे सम्मानित किया जाता है।

अनुवाद कई प्रकार का हो सकता है जैसे–शब्दानुवाद, भावानुवाद, साहित्यिक अनुवाद, छायानुवाद, यांत्रिक अनुवाद, सारानुवाद आदि। अनुवाद कोई कार्बन कॉपी नहीं है। अनुवाद में कला और विज्ञान का अद्‌भुत संगत देखा जा सकता है। वह एक ओर ललित या सृजनात्मक साहित्य की यथातथ्य प्रस्तुति कर कला का परिधान धारण करता है, दूसरी ओर वह औद्योगिक या तकनीकी शब्दावली का संदर्भानुसार व तर्कसम्मत भाषानुवाद प्रस्तुत कर विज्ञान का स्पर्श करता है। हाँ, अनुवादक से यह अपेक्षा की जाती है कि उसे स्रोत भाषा तथा भाषा का समुचित व गहन ज्ञान हो। वह दोनों भाषाओं की प्रकृति से, अभित्यक्ति–शैली से, सॉंस्कृतिक रूप से भली–भाँति परिचित हो। उसे दोनों भाषाओं की शब्द–योजना, वाक्य–संरचना की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। संदर्भित विषय का समग्र ज्ञान भी अपेक्षित है। अच्छे अनुवादक के लिए आवश्यक है कि

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वह अध्ययनशील तथा भाषाविद् हो, उसे विषयवस्तु का पूर्ण बोध हो, उसमें स्वतंत्र चिंतन शक्ति हो और साथ ही उसके सदुपयोग करने की निपुणता भी हो। पाठक को ऐसा लगे कि वह अनुवाद नहीं, मूल पाठ या ग्रंथ पढ़ रहा है। अनुवाद न दूरूह हो, न अटपटा लगे। उसे दोनों भाषाओं के बीच विशिष्ट तालमेल बनाए रखना पड़ता है जो सहज कार्य नहीं है। यह पानी पर लकीर खीचने जैसा दुष्कर कार्य है। उसे अनुवादीय मर्यादाओं का भी पास रखना पड़ता है। सूचना–प्रधान साहित्य और ललित साहित्य के अनुवादों में भिन्नता होती है। सूचना–प्रधान साहित्य के अनुवाद में अनुवादक की रुचि, प्रकृति, उसकी व्यक्तिकता, अलंकारिकता के लिए कोई गुंजाइश नहीं होती, वह केवल वस्तुनष्ठि शैली को ही अपनाकर काम करता है, जबकि साहित्य के अनुवाद में अनुवादक की वैयक्तिकता का, रुचि का, कलात्मकता का, उसके शिल्प का भारी दखल होता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'Light of Asia' (Sir Advin Arnold) का हिन्दी ने अनुवाद 'बुद्धचरित' के नाम से कुछ इसी रूप में किया है। बाबू गुलाबाराय ने इसके विषय में कहा है– ''बुद्धचरित का 'अनुवाद', अनुवाद होते हए भी अनुवाद से अधिक इसे मौलिक रचना समझना चाहिए।''

डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने इस अनुवाद के विषय में कहा है कि उन्होंने 'Light of Asia' का अनुवाद स्वतंत्र होकर किया है, लेकिन अनुवादक की मर्यादा का पालन किया है। काव्यानुवाद में स्रोत भाषा के कवि के भावों–विचारों तथा संवेदनाओं की रक्षा करने पर भी कविता को लक्ष्य भाषा में पुनः रचा जाता है और यहाँ भिन्न–भिन्न कवियों की रचना का अनुवाद भिन्न–भिन्न अनुवादकों द्वारा भिन्न–भिन्न प्रकार से किया गया है, ऐसा देखने में आया है।

यंहां मैं शेक्सपीयर के 'मैकबेथ' की कुछ पंक्तियों के तीन अनुवाद प्रस्तुत कर रही हूँ–मूल पाठ को पहले देखिएः–

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

"Awake, Awake!
Ring the alarms bell! Murder and treason!
Banquo and Donalbain, Malcolm! awake!
Shake off this downy sleep, Death's counter-feit,
And Look on death itself, Up, up and see
The great doon's image!" (Act 2, Sc. 3)

डॉ. हरिवंशराय बच्चन ने इन पंक्तियों का अनुवाद इस प्रकार किया है–

''खतरे का घण्टा बजा दो! – हत्या औ' गद्दारी!
बैंकों, डोनलबेन! मैलकम! जागों, जागो
सुख की निद्रा त्यागो, जो है मौत की नकल
असल मौत को देखो! देखो, उठो, कयामत
की सूरत को!''

डॉ. रांगेय राघव ने इसका रूपांतक इस प्रकार किया हैः–

''उठो! उठो!!
खतरे की घण्टी बजा दो। खून! षड्यंत्र! बैंको! डोनलबेन!
मैलकॉम! कहाँ हो? उठो! मौत की–सी गहरी नींद
को दूर करो! देखो यह खून! हत्या! उठो! उठो!! यह
देखो प्रलय का अंतिम दिन आ गया।''

देखने में तो यह भी आया है कि एक लेखक जब अपनी रचना का एक भाषा से दूसरी भाषा में अंतरण करता है तो दोनों में अन्तर स्पष्ट उभर कर सामने आता है। प्रेमचन्द की एक कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' का हिन्दी रूप 'माधुरी में (1924) छपा और उसका उर्दू रूप 'शतरंज की बाज़ी' 'ज़माना' में (1924) छपा। उसका एक अंश देखिए जिसमें न केवल शब्द–चयन, वाक्य–योजना में भेद है बल्कि वातावरण एवं अनुभूति में भी काफी भेद नज़र आता है।

हिन्दी–रूप देखिएः–

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''अंधेरा हो चला था। बाज़ी बिछी हुई थी। दोनों बादशाह अपने–अपने सिंहासनों पर बैठे हुए मानो उन दोनों वीरों की मृत्यु पर रो रहे थे।''

अब उर्दू–रूप देखिएः–

''अंधेरा हो गया था। बाज़ी बिछी हुई थी। दोनों बादशाह अपने–अपने तख़्त पर रोनक अफरोज़ थे। उन पर हसरत छाई हुई थी, गोया मक्तूलीन की मौत का मातम कर रहे थे।''

साहित्य का अनुवाद संस्कृति के अनुवाद के समान होता है जो भावनात्मक एकता को जन्म देता है, यह कार्य बहुमुखी है। विश्व–साहित्य के विकास में अनुवाद ने हमेशा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। विभिन्न भाषा–भाषी समाजों को नई रचनात्मक ऊर्जा व प्रेरण प्रदान की है और अनुवाद सृजनात्मक कोटि तक पहुँच गया है। रचनाकार के समान अनुवादक भी बहुविध प्रतिभा का धनी होता है और महान् अनुवादक का आविर्भाव भी महान समालोचक के समान विरल होता है। भारत में अनुवाद की परम्परा सदियों पुरानी है। हिन्दी में तुलसीदास ने अपने 'रामचरितमानस' में संस्कृत–काव्यों का सहारा लेकर सुन्दर भावानुवाद किया है। उदाहरण स्वरूप 'मानस' की ये पंक्तियाँ देखिएः–

जब जब होइ धरम कै हानी।
बाढहिं असुर अधम अभिमानी।।

....

तब तब प्रभु धरि विविधा सरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा। (बालकाण्ड, 3–4 / 121)

यहाँ गीता के इस श्लोक की प्रतिच्छाया साफ़ झलकती है। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं–

यदा–यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्।।
परित्राणायम साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे–युगे।। (4–7, 8)

(अथति् हे भारत। जब–जब धर्म की ग्लानि–हानि होती है और अधर्म की प्रबलता फैल जाती है, तब–तब मैं स्वयं ही अवतार लिया करता हूँ। साधुओं की संरक्षा के लिए और दुष्टों के विनाश के लिए युग–युग में धर्म की संस्थापना के लिए मैं लिया करता हूँ)

दाराशिकोह ने उपनिषदों का फारसी भाषा में 'सिरे अकबर' शीर्षक से जो अनुवाद प्रस्तुत किया उससे फारसी भाषी भी अवगत हुए। एक धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान उनके सामने आई। उस पुस्तक का हिन्दी में भी अनुवाद हुआ है। सर्वप्रथम 'मानस' और 'वाल्मीकि रामायण' पर शोध करने वाले डॉ. एल. पी. टेसीदरी हैं। इस ग्रन्थ का प्रकाशन उन्होंने स्वयं सन् 1931 में अपना प्रेस खोल कर किया था। इस ग्रन्थ की रचना उन्होंने अपनी मातृभाषा इटालियन में की थी और इसका अंग्रज़ी अनुवाद भी उन्होंने स्वयं किया। तथा राधिका प्रसाद त्रिपाठी ने इसका हिन्दी अनुवाद (फेजावाद) किया है। प्राच्यविदों ने भारतीय ग्रन्थों का अंग्रज़ी आदि भाषाओं में अनुवाद कर यहाँ की ज्ञान व रचना–प्रतिभा को विश्व के सामने रखा। कार्पेटर, डॉ. ग्रियर्सन, विलियम जॉन्स, मैक्समूलर आदि इसी श्रेणी के विद्वान थे। 'अभिज्ञान–शाकुंतलम्' का परिचय विलियम जॉन्स ने ही योरुप को दिया। रवीन्द्रनाथ टेगोर की महान् काव्य–रचना 'गीतांजली', बंगला से अंग्रज़ी में अनुदित हुई तभी इसका सही मूल्यांकन हुआ और उसे नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया।

हिन्दी में भारतीय भाषाओं का अनुवाद के स्तर पर काफी आदान–प्रदान हुआ है। भारत की लगभग सभी भाषाओं के महान् ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद हो चुका है। और यह क्रम जारी है और

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जारी रहेगा। तमिल कवि तिरुवल्लूवर के महान् ग्रन्थ 'तिरुक्कुरल' के कई अनुवाद हिन्दी में हो चुके हैं। डॉ. शंकर राजू और पं. गोविंदराय जैन शास्त्री के अच्छे अनुवाद हैं। मराठी, संत ज्ञानेश्वर द्वारा रचित 'ज्ञानेश्वरी' का हिन्दी भाषांतर डॉ. प्रभाकर माचवे आदि ने सुबोध भाषा (गद्य) में किया। वेद–पुराण, गुरू ग्रंथ साहब, बाइबल, कुरआन और अन्य धर्म–शास्त्रों के हिन्दी अनुवाद सुलभ हैं; जिनसे धार्मिक सद्भाव का वातावरण पनपता है, परस्पर भाईचारे की भावना को बल मिलता है। जैन विश्वभारती, लाडनूं, (राजस्थान) ने प्राकृत भाषा में लिखित कई एक ग्रन्थों का हिन्दी भाषांतर प्रकाशित किया है।

हिन्दी भाषा में भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य का अनुवाद–कार्य कई एक संस्थाएं सन्विष्ठा से कर रही हैं। जिनमें साहित्य अकादमी, (दिल्ली), भारतीय ज्ञानपीठ, (हिन्दी) हिन्दी प्रचार सभा, (हैदराबाद), आदि प्रमुख हैं। इस प्रकार के अनुदित साहित्य से भारतीय साहित्य की समान प्रवृतियों; रचनात्मक कौशल, भावनात्मक एकता के विकास की, भाषा–साहित्य के विकासोन्मुख स्तर की जानकारी सुलभ होती है। इसी संदर्भ में मैं कश्मीरी साहित्य के हिन्दी में अनुदित कश्मीरी साहित्य की चर्चा विशेष रूप से करना चाहूँगी। कश्मीर को सूफी–संतों की भूमि माना जाता है; जहाँ 14 वीं सदी में निर्गुण संत कवयित्री ने भक्ति–भावना से ओत–प्रोत 'वाखों' (पदों) की रचना कर वादी में एक अभिनव आध्यात्मिक फज़ा पैदा की, वहीं नुंदऋषि ने जिनहें 'शेखुल आलम' भी कहा जाता हैं रूहानी 'श्रुकों' की रचना की। इन दोनों संतों के काव्य का हिन्दी अनुवाद हो चुका है। जिसका श्रेय साहित्य अकादमी दिल्ली और जे. के. कल्चरल अकादमी, जम्मू व कश्मीर को जाता है। डॉ. शशिशेखर ने लल्ल 'वाखों' का पद्यात्मक अनुवाद किया है। डॉ. रतनालाल शान्त ने शेखनूरुददीन (नुंद ऋषि) के काव्य को गद्य में भाषांतर किया है।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

डॉ. शान्त ने 'पोशिमाल' शीर्षक से श्रृंगारिक कवि रसूल मीर के काव्य का हिन्दी में संतरण किया है। कश्मीरी भाषा में रचित महाकाव्य श्रीरामावतारचरित' का हिन्दी में (गद्य) अनुवाद डॉ. शिबन कृष्ण रैणा ने किया है। कश्मीर की लोकगायिका हब्बा खातून के लोकगीतों का अनुवाद मधुप शर्मा ने रसात्मक शैली में किया है। बीसवी शाताबदी के चौथे चरण में प्रकाश, चन्द्रोदय, महावीर जैसी हिन्दी पश्रिकाएं श्रीनगर से निकलती थीं। उनमें बराबर कश्मीरी रचनाओं के हिन्दी रूपांतर प्रकाशित किए जाते थे। डॉ. शिबन कृष्ण रैणा द्वारा कश्मीरी प्रतिनिधि कहानियों का अनुवाद किया गया जिसका प्रकाशन बीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली द्वारा किया गया। 'बिम्बप्रतिबिम्ब' शीर्षक से प्रो. मुहम्मद ज़माँ आजुर्दा के कश्मीरी भाषा में रचे ललित निबन्धों का हिन्दी अनुवाद साहित्य अकादमी ने प्रकाशित कियां इसी प्रकार नेशनल बुक ट्रस्ट, (नई दिल्ली) के द्वारा 'कश्मीरी कहानियाँ 'शीर्षक से हिन्दी रूपांतर का प्रकाशन किया गया। इस पुसतक की कश्मीरी कहानियों का अनुवाद मैंने स्वयं किया है।

उर्दू भाषा का प्रचुर साहित्य हिन्दी में अनूदित हो चुका है। मौलाना आज़ाद का 'गुबारे–खातिर' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उधर उर्दू के जाने–माने आलोचक डॉ. गोपीचन्द नारंग की उर्दू पुस्तकों–जैसे, 'उर्दू पर खुलता दरीचा' अनुवादक–सुषमा भटनागर या प्रसिद्ध कथालेखिका कुरतुल ऐन हैदर की रचनाएं हिन्दी में अनूदित होकर आ चुकी हैं। असम की गोस्वामी हों या बंगाल की महाश्वेता या पंजाब की अमृता प्रीतम सभी की रचनाओं का हिन्दी में भाषांतर उपलब्ध है। भारतीय भाषाओं के सभी प्रमुख लेखकों की रचनाएं हिन्दी में अनूदित होकर आ चुकी हैं जो भारतीयता को, भारत की राष्ट्रीयता को, एकता को उजागर कर अनुवाद की भूमिका के महत्व को दर्शाती है। विदेशी साहित्य को हिन्दी में अनूदित करने का

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कार्य किसी महायज्ञ से कम नहीं। उमर खय्याम की रुबाइयों का डॉ. हरिवंशराय बच्चन ने जो भावानुवाद प्रस्तुत किया, उसकी मिसाल ढूंढने से भी नहीं मिलेगी।

अज्ञेय ने जापानी कविताओं का भावभीना, मनोहर अनुवाद प्रस्तुत किया है। 'अरी ओ करुणा प्रभामयी' नामक संग्रह सन् 1956–57 में छपा जिसमें कुछ जापानी कविताओं का अनुवाद है। जिसे भावानुवाद या छायानुवाद की संज्ञा दी जा सकती है। जापानी लघु कविता 'हाइकू' कहलाती है, जिसमें 5–7–5 वर्णों की तीन पंक्तियां होती हैं–एक अनुवाद देखें:–

क झींगुर झंकार बीच
जुगनू मौन
दहकता। – (अरी ओ करुणा प्रभामय, पृ.. 8)

तथा

ख ताल पुराना
कुदा दादुर
पानी का स्वर – (नया प्रतीक, अक्तूबर–1975)

चेक कवि स्मेकल, पाब्लो नेरूदा आदि की कविताओं के अनुवाद हिन्दी में हो चुके हैं जो इस बात की गवाही देते हैं कि हिन्दी में विदेशी साहित्य को अनूदित कर दो देशों के साहित्य की बहती अनसरत धारा में हम भी अवगाहन कर आनंदित हो सकते हैं। यह तो सांस्कृतिक, साहित्यिक सेतु का काम है, दो देशों के मध्य।

साहित्यिक अनुवाद द्वारा हम अपने देश की सभी भाषाओं के द्वारा घनिष्ठ सम्पर्क बढ़ा सकते हैं। यही नहीं राष्ट्रप्रेम की भावना को संवर्धित तथा पल्लवित कर सकते हैं। एक बड़ी बात यह भी है कि साम्प्रदायिक सौहार्द को मजबूत बना सकते हैं। बशीर अहमद मयूख, (कोटा, राजस्थाऩ) के कवि हैं। उन्होंने बेदमंत्री का, जैन गाथाओं का,

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कुरआन शरीफ की आयतों का मोहक, रसात्मक भावानुवाद 'स्वर्णरेख' द्वारा प्रस्तुत किया है, जिसका सम्मान किया जाना चाहिए।

साहित्य के क्षेत्र में—देश और विदेश दोनों के साहित्य को दृष्टि में रखकर जो अनुवाद कार्य अब तक हुआ है वह सराहनीय है। उससे साहित्यकारों को एक मंच पर साथ लाया गया है। ज़रूरत इस बात की है कि यह प्रयास और तेज़ हो। हिन्दी में गार्मी गुप्त की अनुवाद जैसी पत्रिका और निकलें और विश्वविद्यालय स्तर पर अनुवाद प्रविधि को पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए। अभी गिने—चुने विश्वविद्यालयों में ही अनुवाद का विभाग कायम हो सका है। उसकी ओर संजीदगी से विचार करने की ज़रूरत है। अनुवादकों के प्रशिक्षण की ज़रूरत को भी महसूस किया जाना चाहिए। उनके लिए कार्यशालाऐं आयोजित की जानी चाहिएं। ज़ाहिर है ऐसी योजनाएं पृथक भाषा और साहित्य को जोड़ने का प्रयास होंगी। दो, तीन भाषाओं को, अनके साहित्य को सामने रखकर, संवाद सीपित करके अनुवाद को बहुव्यापी आयाम देने की आवश्यकता है। आशा है इस महायज्ञ में हम सभी को शामिल होना चाहिए।

1. न्यायसूत्र—(2.1.68, सं. 1936, पृ. 123)
2. शब्दार्थ चिंतामणि, भाग 1, सं. 1786, पृ. 88, सं. सुखानंद नाथ
3. ऐतरेय ब्राह्मण, 1, 2.15, पृ. 202
4. ब्रहदारण्यकोषनिषतृप्र—पृ. 711
5. सं. रामचन्द्र वर्मा

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''नारी के विविध रूपों को चित्रित करता राजी सेठ का कथा–साहित्य''

डॉ. आशा अनेजा

सृष्टि के निर्माण और संचालन में नारी की महत्वपूर्ण भूमिका आरम्भ से ही स्वीकार की जाती रही है। मानव जाति की सम्भता और संस्कृति के विकास में नारी का अभूतपूर्व योगदान है। नारी पुरूष प्रेरणा और उस की शक्ति है। पुरुष नारी से सहयोग पा कर ही विकास प्राप्त करता है। नर और नारी दोनों एक दूसरे के पूरक हैं.। सृष्टि की रचना दोनों के सहयोग और समचय का ही फल है। डॉ. राधाकृष्णन ने जुलू शब्द, शब्दकोश के आधार पर पुरुष के सम्बंध में लिखा है ''एक पशु जिस का प्रशिक्षण नारी करती है। नारी मूलतः पुरुष की शिक्षिका है, तब भी जब वह बच्चा होता है और तब भी जब वह व्यस्क होता है।''[1]

प्राचीन काल से नारी के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की धारणाएँ प्रचलति रही हैं। एक तरफ उसे पूजा के योग्य मान देवी समझा गया दूसरी तरफ उसे सिर्फ देह यानि भोग की वस्तु समझाा गया। वास्तव

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में, नारी को नारी यानि मानवी और मानुषी क्रम माना गया, लगभग पूरे विश्व केन्द्र में पुरुष रहा। नारी लगभग पूरे विश्व में ही केन्द्र में पुरुष रहा। नारी को केवल उस की सहायिका माना गया। इसी कारण उस के बारे में अनेक भ्रातियां उत्पन्न की जाती रही। धर्मपाल के अनुसार – ''निजी स्वार्थवश और निजी वर्चस्व बनाए रखने के लिए पुरुष ने अधिकतर नारी को स्वंय से हीनतर प्रस्थापित किया। यही कारण है कि समूचे विश्व के पुरुष समान सोच रखते आए हैं। देव, ऋषि, मुनि, अवतार अथवा पुरुष सभी ने नारी की भर्त्सना की उस में अवगुण देखे और स्वयं को सर्वश्रेष्ठ जताने की गाथाएँ लिखी और कहीं। यह पक्षपात पूर्ण विचार धारा नारी को पददलित करने में सफल हुई और नारी आज भी इसी का शिकार है।''[2] नारी को पुरुष से हीन और अबला मानना उचित नही। माहत्मा गांधी का इस सम्बन्ध में कथन है– ''स्त्री को अबला कहना उस का अपमान है यदि शक्ति का अभिप्रोय पाशविक शक्ति से है तो स्त्री सचमुच पुरुष की अपेक्षा कम शक्तिशाली है। यदि शक्ति का मतलब नैतिक शक्ति से है तो स्त्री पुरुष से कहीं अधिक शक्तिमान है।''[3] पर पुरुष समाज में नारी को कभी भी मानव रूप में स्वीकार कर उसे सम्मानित नहीं किया गया इसी कारण नारी भोग की वस्तु बन कर तिरस्कृत भी हुई और उसे साधना में बाधक तत्त्व मान कर प्रताड़ित भी किया गया।

नारी पुरुष से अधिक स्नेह, दया, कोमलता तथा नैतिक गुणों से भरपूर होती है इसी कारण मानवीय भी अधिक होती है। नारी पूरे परिवार का ध्यान रखती है, कार्य करती है, सभी की सेवा करती है, त्याग और प्रेम करती है तभी तो कर्म की जीती जागती मूर्ति है। मनुस्मृति में नारी की पूजा की बात की गयी है– ''यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते, समन्ते तत्र देवती।''[4] अर्थात जहाँ नारी की पूजा होती है वहां देवता निवास करते हैं। जयशंकर प्रसाद नारी के श्रद्धा रूप को देखते है। वह लिखते हैं।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में

पीयूष स्त्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।'' [4]

अर्थात नारी का पतिव्रता रूप पूज्नीय है पर जहां वह अपने स्वतंत्र अस्तित्व की बात करती है सहसा वह निंदा की पात्र बन जाती है।

सर्वप्रथम नारी शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में मिलता है। जहाँ उस का अर्थ पत्नी के अर्थ में मिलता है। यास्क ने ''नर'' शब्द को नृत्य से बना माना है। काम की पूर्ति के लिए पुरुष हाथ–पैर नचाता है इसीलिए उसे नर कहा जाता है। नर की कामभावना में सहयोगी होने के कारण स्त्री को नारी कहा गया है।''[6] डॉ. गजानन शर्मा के अनुसार – ''कार्यों, रूपों और परिस्थितियों के अनुसार नारी के अनेक रूप भारतीय साहित्य में प्रचलित हैं जिन में नारी के विभिन्न स्वरूपों का बोध होता है, किंतु नर के धर्म वाली या नर से संबंध होने के कारण नारी नाम पडा है। ''[7] अमर कोश में नारी के पर्यायवाची अनेक शब्द मिलते हैं– स्त्री, योषित अबला, वधू, सीमांतिनी, वामा, वनिता, महिला, कांता, सुंदरी, रमणी, रमा, भामिनी, चडी, महिषी, भोगिनी, पत्नी, सहधर्मिणी, भार्या, स्वयंवरा, कुलपालिका, आदि।''[8] इन शब्दों के अतिरिक्त नारी के लिए और भी अनेक शब्दों का प्रयोग विद्वानों द्वारा किया गया है। नारी की शरीर रचना पुरुष से भिन्न होती है उस का सम्बन्ध पुरुष के साथ विशिष्ट होता है। डॉ. गणेशदास नारी की शारीरिक स्थितियों के बारे में बात करते हुए कहते हैं कि ''नारी के प्राकृतिक रूप को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि अपने प्राकृतिक रूप में नारी के – मा़दा के रूप की तीन स्थितियां हैं जो शारीरिक धरातल पर आधिारित है, परिवारिक या सामाजिक पर नहीं। पहली स्थिति वह है जहाँ उस को किसी नर से शारीरिक सम्बन्ध नहीं रहा है। दूसरी स्थिति वह है जिस में उस ने

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किसी नर के साथ शारिरिक संबंध रखा है और तीसरी स्थिति वह है जिस में उस ने गर्भ धारण कर के पुत्र या पुत्री को जन्म दिया है। इन स्थितियों को सामाजिक दृष्टि से कन्या, पत्नी और माँ के नाम से अभिहित किया जाता है।'' [9]

नारी पुरुष की पूरक होने के साथ–साथ जननी भी है। एक नया जीवन रचने की क्षमता केवल उसी में है। यही कारण है कि पुरुष से उस की मानसिक और शारीरिक बनावट में अन्तर है। यह अन्तर नारी को पुरुष से अधिक मानवीय, शोत और वत्सल बनाता है। पर नारी नारी हो कर, माँ हो कर, पत्नी हो कर भी सर्वप्रथम मानवी है। पर हमारी सामाजिक व्यवस्था ऐसी है कि नारी को मानवी कम और मादा रूप में अधिक देखा गया है। यही कारण है कि आज नारी केवल देह भर बन कर रह गयी है। इन्हीं स्थितियों के बदलाव के लिए नारी सशक्तीकरण की बात होती है। नारी स्वतंत्रता और उस की मुक्ति की बात होती है। नारी मुक्ति और स्वतंत्रता की यह बाते और संघर्ष उतना ही पुराना है जितना नारी शोषण का इतिहास। राष्ट्र और मानव समाज की उन्नति के लिए नारी मुक्ति आवश्यक है। नारी मुक्ति के सम्बन्ध में इरफाना शरद का कहना है ''नारी मुक्ति से मेरा मतलब तो यही है कि उन्हें समान शिक्षा और काम करने की आजादी दें, उन्हें समान अधिकार मिलें जिस के तहत वे अपने परिवार का और पूरे समाज का विकास कर सकें। [10] नारी के दोयम दर्जे पर होने और जाने अनजाने अनेक बार अन्याय का शिकार होने के कारण नारी हमेंशा पीडित होती रही है। नारी पीडा की यह अभिव्यक्ति नारी वादी चिंतन के रूप में साहित्य में स्थान पाता रहा है। भारत में नारीवादी आन्दोलन 1970 के आसपास शुरु हुआ। इस साहित्य के केन्द्र में स्त्री रही। ''साहित्य में व्यक्त होने वाली पुरुष प्रधान संस्कृति पुरुष वर्ग की स्वार्थी प्रवृत्ति, विषम मूल्य व्यवस्था और कार्यपद्धनि का पर्दाफाश करना, स्त्री द्वारा निर्मित

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साहित्य के स्त्री विशिष्ट अनुभव, स्त्री संस्कृति, स्त्री भाषा आदि का स्वरूप स्पष्ट करना, उस का निर्णय एव मूल्यांकन करना स्त्रीवादी साहित्य कहलाता है।"[11]

स्त्रीवादी साहित्य के केन्द्र में स्त्री है। पीड़ित नारी का आक्रोश कुंठा, घुटन को अभिव्यक्त करता यह साहित्य नारी की समस्याएं और समाधान प्रस्तुत करता है। कथा साहित्य में नारी के अनेक रूप मिलते है। नारी न तो अपनी पूजा चाहती है। और न ही प्रताडित होना वह केवल समता का अधिकार चाहती है। अपनी जरूरतों को पूरा करना चाहती है। अपनी इच्छाओं को दबाना नहीं बताना चाहती है और चाहती है कि पुरुष उसे समझे उसे जाने और उस के स्वतंत्र व्यक्तित्व को स्वीकार करे। हिन्दी कथा साहित्य समाज की भिन्न–भिन्न दशाओं परम्पराओं और परिस्थितियों में नारियों की दशा और उस की समस्याओं को ले कर विस्तार पाता रहा है। पुरुष लेखकों की अपेक्षा लेखिकाओं का जीवन क्षेत्र नारी जीवन से संबंधित होने के कारण उन की कहानियों में नारी के विविध रूपों में परम्परागत धारणाएं तो दिखाई पडती ही है साथ ही उस के अन्य रूप का अंकन भी सफलता पूर्वक हुआ है। पंजाब की कथाकारा राजी सेठ का नाम किसी परिचय का मोहताज नहीं है। उन की कहानियों में नारी के विविध रूपों का चित्रण मिलता है। सरल मन और संवेदनशील राजी सेठ नारी मन की सूक्ष्म भावनाओं की सफल अभिव्यक्ति अपनी कहानियों में करती हैं। सदियों से जो नारी पिता पति और पुत्रों पर अवलम्बित थी। आज के युग में उस ने अपनी पहचान स्वयं से की है। अपनी भावनाओं और आवश्यकताओं को पहचाना और इसी के साथ उस का रूप बदला। परम्परागत रूपों के साथ–साथ उस ने अपने नये स्वरूप को पहचान दी। इन सभी का चित्रण राजी सेठ का कथा संसार बखूबी व्यक्त करता है।

परम्परागत पतनी– राजी सेठ की कहानियों में स्त्री–पुरुष के

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पारस्परिक सम्बंधों का चित्रण व्यापक रूप में हुआ है। कहानियों में नारी का पत्नी रूप अधिक महत्वपूर्ण ढंग से उभरा है। प्राचीन भारतीय परम्परा में पत्नी का पति के प्रति निष्ठावान रहना आवश्यक माना जाता था। व्यावहारिक धरातल पर पत्नियाँ आज भी निष्ठावान ही है। पति को सर्वस्व मान पत्नियाँ परम्पराओं का पालन और निष्ठाओं का निवर्हण करते हुए अन्याय भी सह लेती हैं। ऐसी पत्नियाँ परम्परागत पत्नियाँ मानी जाती हैं। स्त्री राजी सेइ की कहानी इसी श्रेणी में आती है। यह कहानी ग्रामीण स्त्री की संवेदना व्यक्त करती है। देहाती लोग अशिक्षा और अज्ञान के कारण अंधविश्वासी बन जाते हैं। तांत्रिक–मान्त्रिक को सिद्ध मान कर उन्हें संकट निवारक के रूप में देखते हैं। देहात में रहने वाली स्त्री की मनोव्यथा को भी इसी पृष्ठभूमि के आधार पर चित्रित किया गया है। 'कमली' अनपढ़ और गवार महिला है। गावं में एक सिद्ध पुरूष आए हैं, वह उन से मिल कर अपना दुख दूर करना चाहती है। उस के पास कमली का पति गया है पर उस ने कमली को नहीं बताया कि वह सिद्ध बाबा के पास क्यों गया था। पर वह पति से कुछ पूछ भी नहीं सकती। पति के लिए वह बहुत कुछ करती है। 'पकाएगी–खिलाएगी सेवा करेगी– पर कभी इत्ना भी नहीं जान पाएगी कि सब के मन में क्या–क्या है?'[12]

स्त्री होने के कारण उस से कुछ पूछा या बताया नहीं जाता। उस का दर्द सुनने वाला कोई नहीं। पति कमली की इच्छपाओं का ध्यान नहीं रखता उस का वास्ता सिर्फ कमली की देह से है। कमली सिद्ध बाबा से मिलने के लिए निकलती है उस के पास अधिक पैसे भी नहीं है। वह सोचती है "कमली तो स्त्री है। उस के पास लेने–देने को कहाँ से कुछ आए गा।"[13] रास्ते में उसे एक परिचित मिलता है जो उसे बताता है कि पति बाबा के पास बैठा है। कमली सोचती है कि उस के पति को करूा परेशानी है। यह सोचती हुई वह बाबा से बिना मिले वापिस लौट आती है। पति ने कमली को स्त्री या पत्नी

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

होने के नाते दूसरे दर्जे पर रखा था। घुटन भरी ज़िन्दगी जीते हुए कमली सोचती है कि स्त्री को हर प्रकार का कष्ट, त्याग झेलना ही पडता है। उस की यह सहनशीलना और धारणा उस के परम्परा–गत चरित्र को दर्शाता है।

'अभी लो' राजी सेठ की पुरुष प्रधानसंस्कृति में स्त्री की होने वाली अवहेलना को चुनौती देने वाली सशक्त स्त्रीवादी कहानी है। भारतीय घर में पुरुष की ही सत्ता चलती है। निर्णय लेने का अधिकार पुरुष का ही होता है। स्त्री की इच्छा, विचार जानने की चेष्टा नहीं की जाती। इसी कारण स्त्री निरूपाय होती है। वृंदा पढ़ी लिखी महिला है जिस 18 वर्षो निःसंतान स्त्री होने का दुख झेलना पडा है। वह नोर्वेकर दम्पति से मिलती है जो पीडितों की सेवा में अपना समय लगा रहे हैं। वृंदा इस दम्पति से प्रेरणा ले अंपगों की सेवा तथा प्रौढ़ शिक्षा का प्रसार करते स्कूल में काम करने लगती है। मातृभाषा के महत्व को समझा कर अंगेंजी भाषा का प्रभाव, अंगेजी स्कूल की पढ़ाई की श्रेष्ठता की धारणा को तोडना चाहती है। इसलिए वह सभा, दफतर डाकखाना, स्कूल आदि में हिन्दी का प्रचार कार्य करती है। पत्राचार, आमंत्रण पत्र वार्तालाप ओर अभिवादन वह हिन्दी में ही करती है। वृंदा का व्यक्तित्व नये सिरे से उभर रहा था। इसी बीच वह पीयूष की माँ बनती है। वृंदा का पति हिन्दीभाषा के प्रति हिकारत रखता है तथा अंग्रेजी भाषा को श्रेष्ठ मानता है। कान्वेट स्कूलों की प्रतिष्ठा, प्रतियोगिता तथा स्तरीयता को उच्च मानते हुए वह वृंदा से विरोध कर अपने पुत्र को अंगेजी स्कूल में दाखिला दिलवाता है। वृंदा विवश हो कर सोचती है– ''क्या किया जा सकता है इस हीनता के विरूद्ध। अभी तो अपने भी उपकरण ढीले हैं, अपनी भी निष्ठा पोली–पोची।''[14] अपने ही घर में वह हार गयी और पति यानि पुरुष जीत गया। अपने स्वतंत्र पहचान बनाने वाली स्त्री भी निर्णय को लागू नहीं करवा पाती। हर प्रकार की क्षमता रखते हुए भी नारी

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

असहाय और विवश बन कर दूसरे दर्जे पर ही परम्परागत नारी की तरह खडी रह जाती है।

विद्रोही पत्नी– वर्तमान समय में पत्नी के व्यक्तित्व में परिवर्तन हुआ है। आज नारी स्वतंत्रचेता, व्यक्तित्व सम्पन्न, शिक्षित और आत्मनिर्भर हो गयी है। परम्परागत मान्यताओं के विरोध में खड़े होने के कारण उस का विद्रोही रूप सामने आने लगा है। डॉ. शीला रजवाल के अनुसार ''पहले नारी को भावना की कसौटी पर कसा जाता था किंतु अब उस का माप–दंड बौद्धिकता है। यह बौद्धिकता विद्रोह और निर्लिपवता दो रूपों में प्रकट हुई है।''[15] राजी सेठ की कहानियों में नारी की इस बदली हुई मनःस्थिति का चित्रण मिलता है।

अंधे मोड़ से आगे राजी सेठ की एक स्त्रीवादी कहानी है। आज की नारी के लिए अपनी पहचान और अपना व्यक्तित्व बहुत मायने रखता है। पति–पत्नी के संबंधों को उन में आए हुए परिवर्तन को अलग दृष्टिकोण से पाथित करने वाली यह प्रभावशाली कहानी है। कहानी की 'वह' आफिस में कार्य करती है। पति की उपेक्षा और प्रताडना से सत हो कर बॉस मिश्र के साथ विवाह कर लेती है। पर विवाह के पश्चात भी वह सुख अनुभव नहीं करती। अतीत और वर्तमान की तुलना करती हुई वह सोचती है ''सुरजीत में एक प्रकार की आदतें थी तो मिश्रा में दूसरे प्रकार कीं वह एक प्रकार से देह तक पहुँचता था तो यह दूसरे प्रकार से।''[16] मिश्रा की पहली पत्नी के देहांत का अतीत उसे कष्ट देता है जिस के कारण सारे भोतिक सुख उसे नगण्य लगते हैं। सुरजीत से जुडा अतीत और वर्तमान में मिश्रा का होने वाला बच्चा दोनों ही उसे परेशान करते हैं। वह सोचती है कि क्या वह यही पाने के लिए यहाँ आई थी? उस के सपने और आकंक्षाएं तो अभी भी अधूरी हैं। ''अपने भीतर के सच के किए संघर्ष करते रहने की चुनौती भी जाने कहाँ खो चुकी है। अब अंधे मोड हैं

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

दोनों तरफ और धूरता हुआ भोचक्का वर्तमान।''[17] अपूर्णता के दुख से मुक्त होने के लिए वह खिडकी दरवाजे खोल देती है। नये आत्मविश्वास से भर वह जान लेती है कि जीने के लिए उसे किसी की भी जरूरत नहीं। अस्पताल में जा बेझिझक डॉ. के पास गर्भपात का विचार रखते हुए कहती है– ''यह किसी की जिम्मेवारी नहीं है यह रेप का केस है।''[18] गर्भ पात का निर्णय ले कर वह उस रिश्ते को नकार देती है, जो उसने सुख प्राप्ति के लिए जोड़ा था। जिस पुरुष को वह अन्तर्मन से प्रेम नहीं कर पाई उस के साथ संबंध रेप जैसा ही है। आज की नारी का विवाह विषयक दृष्टिकोण बदल गया है। आज नारी के लिए सब से अधिक महत्वपूर्ण स्वयं का अस्तित्व और अस्मिता है। वह दूसरों के उपभोग की वस्तु बनने से इन्कार करती है। भौतिक साधन सम्पति और मातृत्व के नाम पर अपनी भावना और इच्छा कुचलने को तैयार नहीं है। उसे पति का एकनिष्ठ प्रेम और आत्मसमर्पण चाहिए। कहानी की स्त्री आधुनिक और स्वतंत्र नारी का प्रतिनिधित्व करती है।

राजी सेठ ने 'ढलान पर' कहानी में भी स्त्री की मानसिकता की बारीरिकों को पकडने का प्रयत्न किया है। आज की माँ और पुरूष की भोगवस्तु बनना नहीं चाहती। चारू और चेतन का प्रेम विवाह हुआ था। विवाह के बाद चेतन काम में अधिक व्यस्त होता है। चेतन की लापरवाही झेलती चारू को पहले वाला चेतन चाहिए ''चेतन उसे खूब–खूब पसन्द है, पर किताबों, फाईलों, मुकदमों के बोझ से दबा चेतन नहीं,, पक्षियों की उडान को अपनी हथेलियों में कैद कर सकने वाला चेतन।''[19] उपेक्षित चारु को जब चेतन की दीदी माँ बनने का प्रस्ताव देती है तो चारु उस के लिए भी तैयार नहीं– ''उन के वंश का जुआ उठाने वाला बैल नहीं हूँ मैं–जैसे मैं इंसान को नहीं घर को ब्याही गयी हूँ।''[20] लेखिका चारु को चित्रकार नलिन दवे के साथ किसी रेस्तरां में देखती है। वह महसूस करती है

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कि चारु के व्यवहार में पहले जैसी बौखलाहट और गुस्सा नहीं रहा। लेखिका सोचती है– –क्या आवेश में बहता पानी ढलानों का जायजा ले रहा है।''[20] चेतन से चाहत पूरी न होने पर चारु दवे में विकल्प खोज लेती है पति–पत्नी जब एक दूसरे को भावनाओं को समझ कर पूरक न हो सके तो ऐसी स्थिति का निर्माण होना स्वाभविक है। पुरानी मान्यता और परम्परा से हट कर चारू जीने का पर्याय चुनती है। विशिष्ट स्त्री के रूप में उभरी चारू का निर्णय विद्रोही रूप को दर्शाता है। जो सही गल्त की परवाह किए बिना मनचाही ज़िन्दगी जी रही है।

अस्तित्व से बडा स्त्री मन की सूक्ष्यता को उधाडने वाली मनोवैज्ञानिक कहानी है। स्त्री एक व्यक्ति है और स्त्री व्यक्तित्व होने के नाते उस की एक अलग मानसिकता है। स्त्री पुरुष से ऐसा प्रेम चाहती है जो उस के अस्तित्व से बडा हो जिस में वह डूब जाए। स्त्री की अतल गहराइयों को छुए बिना किया गया प्रेम प्रेम नहीं हो सकता। कहानी की रीनू पढ़ी लिखी समझदार स्त्री है। बचपन से उस के घर एक युवक आता था जो रीनू को चाहता था। पर रीनू उस के प्रेम को समझ नहीं पाती। रीनू सुमंत से प्रेम करने लगती है। उस की शादी सुमंत से तय होती है। युवक भी इस अवसर पर आया हूँ प्रेम में बेसुध वह रीनू को कहता है ''इस दुनिया में तुझे और मेरे जैसा प्यार करने वाला, इतनी उष्णता देने वाला दूसरा न कोई है, न मिलेगा। इस प्यार को ही नहीं जानोगी तो इस बात को भी कभी नहीं जान पाओगीं''[22] विवाह के पश्चात् रीनू उस को भूल नहीं पाती। पति–पत्नी के बीच भुवक का अदृश्य अस्तित्व बना हुआ है। भावनात्मक क्षणों में रीनू के हाथ पैर ढीले पड जाते हैं वह असहज हो जाती है। सुमंत से कहती है ''मैं तुम्हें जितना प्यार करती हूँ सुमंत। तुम मुझे उस से ज्यादा क्यों नहीं करते मुझ से बडा मेरे सारे अस्तित्व से बडा।''[23] रीनू नई अनुभूति से जुडना चाहती है पर यह अनुभूति

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पुरानी अनुभूति से ज्यादा गहरी नहीं है। इसी कारण रीनू शिथिल है, असहज है। उस का मन प्रेम के उन अनभवों को कहीं न कही तौल रहा है। उस के मन में दोनों के प्रति लगाव है। स्त्री प्रेम की जिस गहराई को पूर्णत्व को और अनुभूति के जिस रूप को चाहती है उसे समझ पाना ओर उस की पूर्ति करना पुरुष के लिए संभव भी नहीं है क्यों कि प्रेम में पूर्णत्व संभव भी नहीं होता। हिन्दी कहानियों में इस प्रकार नई दिशा को ले कर चलने वाले और आधुनिक नारी पात्र कम ही आए हैं।

विद्रोही प्रेयसी– वर्तमान समय में नारी की प्रेम सम्बन्धी दृष्टि भी बदल गयी है। उस के प्रेम सम्बन्धों में अधिक स्वतंत्रता एवं स्वच्छंदता आई है। नैतिकता सम्बन्धी परम्परागत मान्यताएं बदल जाने से पुरूषों के साथ उस के सम्बन्ध स्वतंत्र हो गये हैं। डॉ. गणेशदास के अनुसार ''एक से प्रतिबद्ध रह कर प्रेम करना और उसी से जुड कर रहने वाली धारणा भी बदली है।''[24] विवाहेतर सम्वन्ध अब नारी को अपराध नहीं लगते। वह अपने पति और प्रेमी के साथ बिताए क्षणों को विश्वास के समान धरातल परजीती है।

आधुनिक जीवन बोध से जुडी राजी सेठ की कहानी दूसरे देशकाल में स्त्री पुरुष संबंधों को नए दृष्टिकोण से देखती है। पुरूष प्रधान समाज में दबी हुई स्त्री को इस कहानी में नया स्वर प्रदान किया गया है। स्त्री पुरुष द्वारा शासित न हो कर स्वतंत्र व्यक्ति होनी चाहिए। नैतिकता सम्बन्धो नियम एक–पक्षीय तथा स्त्री विरोधी है इसे नये सिरे से गढने की जरूरत है यह विचार कहानी की शुचि द्वारा प्रकट हुआ है। कहानी में रोहित का तलाक नहीं हुआ है और वह जिस स्त्री से प्रेम करता है वह रोहित के बच्चे की माँ बनने वाली है। दोनों विवाह नहीं कर सकते इसलिए गर्भपात का निर्णय लिया जाना है। रोहित अपनी प्रेमिका को अस्पताल में भर्ती करता है। रोहित के कॉलेज में शुचि स्वाभव की प्रौढ महिला है। रोहित शुचि के

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रति गहरी आस्था रखता है और उसे सारी बातें बताता है। शुचि अस्पताल में उस की प्रेमिका को मिलती है। उसे सांत्वना देती हैं। शुचि उसे अपराधी नहीं समझती ''हम लोग कब तक उन बातों के लिए कलकिंत होते रहेगे, जिन्हें हम ने अकेले नहीं किया।''[25]

शुचि मरम्परा और रुढ़ियों से जयादा प्रेम भावना को महत्वपूर्ण मानती है इसलिए वह अविवाहित मातृत्व को कलंक नहीं मानती ''एक इन्सान का जन्म अगर महत्वपूर्ण हैं तो है। सात फंरों के अभाव में वह महत्वहीन कैसे हो जाए गा।[26] शुचि की बातों से प्रेमिका को थोडी राहत मिलती है। पर हमारे समाज में तो अविवाहित मातृत्व मान्य नहीं है फिर ऐसे देशकाल का निर्माण करना पडे गा जहां स्त्री अपराध बोध से मुक्त शिशु को जन्म दें शुचि प्रेमिका के विद्रोहीरूप का समर्थन करती है और उसे अपने विद्रोह पर अडिग रहने की सलाह देती है।

संतुलित नारी का चित्रण– प्रत्येक काल में किसी भी समाज व्यवस्था में परस्पर विरोधी धारणाएँ और परम्पराएँ प्रचलित होती हैं। समाज का एक वर्ग ऐसा होता है जो परम्पराओं, आदर्शों और मूल्यों के निवर्हण में जीवन की सार्थकता मानता है दूसरी ओर समाज में ऐसा वर्ग भी होता है जो जड परम्पराओं ओर मान्यताओं के विरोध में खड़ा होता है। यह वर्ग परिवर्तन की प्रक्रिया कोगति देता है। इन दो परस्पर विरोधी वर्गों के बीच एक तीसरा वर्ग भी होता है तो नये और पुराने विचारों के बीच संतुलन निर्माण का प्रयत्न करता है जिसे हम संतुलित वर्ग कहते हैं। परम्परा और विद्रोह के बीच एक संतुलन का निर्माण कर के ये जीना चाहते हैं।

'उसी जंगल में' राजी सेठ की प्रसिद्ध कहानी है। स्त्री अगर अपनी स्वतंत्र पहचान 'बनाना चाहती है तो उसे स्वाबलंबी होना पडता है। स्वाबलंबन से वह स्व की और स्वभिमान की रक्षा कर

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सकती है। कहानी में स्त्री ससुराल रूपी जंगल में कैद है। जहाँ जानवर रहते हैं। संवेदनशील और स्वाभिमानी व्यक्ति होने के कारण इन्सानी जानवरों के साथ रह नहीं सकती इसलिए वह अलग होने का निर्णय ले कर स्वंय की रक्षा करती है। पति के जुल्म न सह पाने के कारण वह गर्भवती अवस्था में घर का त्याग कर देती है। बच्चे के प्रति भी वह अधिक लगाव महसूस नहीं कर पाती क्यों कि वह उसे अतीत की याद दिलाता है इस लिए बच्चे की जिम्मेदारी वह अपनी निःसंतान भाभी को दे देती है। दूसरे गांव में नौकरी करने लगती है। उस का पति किसी विधवा की बेटी को अपने पास रख लेता है जो अब माँ बनने वाली है। पति तलाक चाहता है। वह तलाक देना नहीं चाहती थी पर उस औरत के लिए वह अपना अधिकार छोड देना चाहती है। ''वह क्या करेगी उस अधिकार के पटटे को जो कभी उस का था ही नहीं।''[27] कहानी की 'वह' पति को परमेश्वर नहीं साथी मानती है। सथीी अगर संगत का न हो तो उस की पाशवी प्रवृत्ति से मुक्त होने में ही उस ही भलाई है। अपनी जगह वह स्वयं बनाती है जो उस के चरित्र के संतुलित रूप को मुखरित करता है।

संतुलित प्रेयसी– परम्परागत मान्यताआं, त्याग, आदर्श एवं वायवी कल्पनाओं से अलग इन प्रेमिकाओं के प्रेम में प्रगतिशीलता नयापन एवं ताजगी है। इस वर्ग की प्रेमिकाएँ विशेष स्थिति में एक से अधिक पुरुषों से प्रेम करने को गलत नहीं मानती। विवाह एक सामाजिक बंधन है तो प्रेम एक भावनात्मक आंतरिक लगाव है। विवाह के बाद भी प्रेमी ही अपना लगता है लेकिन प्रेम के लिए पति का त्याग करना भी संभव नहीं होता। इन दोनों स्थितियों के बीच रह कर वे अपने जीवन की राह बनाती है।

'सदियों से' नारी मन की गहराई और सूक्ष्म ज्ञंवेदना को अभिव्यक्त करने वाली सशकत स्त्रीवादी कहानी है। प्रेम और विवाह का निर्वाह करते मीनल कई यातनाओं से गुजरती है। वह हेमन्त के

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साथ जुडा अपना अतीत भूल नहीं पाती और सतत् तनाव की जिन्दगी व्यतीत करती है। पुरुष व्यवस्था स्त्री को अपनी सम्पति मानता है। उस के मन ओर देह पर अपना अधिकार बनाए रखना चाहता है। पर स्त्री का अपना मन और भावनएँ होती हैं। सदियों के संस्कारों के कारण स्त्री इन दो पाटों के बीच पीसी जाती रही है। लेकिन आज की स्त्री अपने स्व के प्रति आधिक सजग होने के कारण उस का अनुभव तीव्रता से करती है।

नारी के अन्य रूप– राजी सेठ की कहानियों में नारी को परम्परागत विद्रोही तथा संतुलित वर्गों में रख कर देखा गया है। लेकिन मनुष्य का व्यक्तित्व बहुआयामी एवं विविधता से पूर्ण होता है। इसलिए सभी चरित्रों को वर्गों में बांटना संभव नहीं होता। आज नारी का कार्यक्षेत्र बदल गया है आज उस की अपनी दृष्टि विकसित हो रही है और वह अपनी संवेदनाओं को स्वयं अनुभव और व्यक्त करने लगी है।

स्त्री की मानवीय संवेदना को अभिव्यकत करने वाली राजी सेठ की 'कब तक' मार्मिक कथा है। उच्चवर्गीय लोगों के मन में नौकरों और गरीबों के प्रति घृणा और हीन भावना होती है। अमीर लोग दीन हीन लोगों का शोषण करते हैं। कहानी की स्त्री ऑफिस में कार्यरत हैं। पति बच्चा और सास घर में हैं। बहादूर घरेलू नौकर है। वह पढना चाहता हैं पर अम्भा को पसन्द नहीं। समाज में सामान्य रूप से नौकरों के संदर्भ में एक धारण है ''हमें नौकर चाहिए जड गंवार गघेलू पिटठू नौकर जिस के चेहरे पर कोई सपना चिपका हुआ न हो।''[28] बहू के मन में बहादूर के प्रति आत्मीयता ओर करूणा है। वह बहादुर को बचा कर अच्छी जगह नौकरी दिलाना चाहती है। अपने पति से कहती है ''उसे कॉलेज की लायब्रेरी में रखवा दो–खुश तो रहेगा।[29] व्यावहार कुशल पति कहता है– वह चला गया तो घर कैसे चलेगा कभी यह भी सोचा है तकलीफ होने लगे भी तो वह खुद

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

ही भाग जाए गा।[30] कहानी में पति और अम्भा मालिक ओर नौकर की परम्परागत ऊँचनीच की मान्यता को ले कर चलते है तो बहू नौकर के प्रति मानवीय दृष्टिकोण रखती है। स्वयं कामकाजी होने के कारण कार्यरत व्यक्ति की स्थिति और यातना को बखूबी समझती है। पुरुष की तुलना में नारी अधिक मानवीय होती है यह बात उस के चरित्र से स्पष्ट होती है। दया करूणा प्रेम आदि मूल्य भी पुरुष की अपेक्षा नारी के पास अधिक होते हैं। आज की आधुनिक नारी मनुष्य की समस्याओं को समझने लगी है।

स्पष्ट है कि राजी सेठ की कहानियों में अभिव्यक्त नारी के चाहे जिस रूप का भी चित्रण हुआ है वह अपने व्यक्तित्व के प्रति सजग है, सचेत है। स्वयं अपनी पहचान बनाने के लिए प्रयतनशील है। नारी स्चनाकार होने के कारण नारी मन की सूक्ष्म पकड इन कहानियों में संभव हुई हैं आर्थिक आत्मनिर्भरता, शिक्षा, सामाजिक जागृति, पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव, परिवेशगत परिवर्तन आदि के कारण नारी में आत्म–विश्वास का निर्माण हुआ है। स्वावलंबी और स्वयं पूर्ण बन कर अपने निर्णय उस नें खुद लिए है। राजी सेठ की कहानियें में परम्परागत सम्यताओं धारणाओं और नैनिकता संबधी नियमो को नकारने के कारण नारी में नई नेतिकता और जीक से हट चलने का साहस दिखाई दिया है। कुल मिला कर कहा जा सकता हैं राजी सेह की कहानियों में नारी की नई पहचान बन रही है जो भविष्य की मानव सम्यता और संस्कृति के निर्माण में महत्वपूर्ण साबित होगे। भविष्य की औ बढते नारी के कदम अवश्य ही नारी जीवन को नया आयाम देंगे।

सहायता ग्रंथ सूची

1. डॉ. राधाकृष्णन् धम्र और समाज, पृ. 167
2. धर्मपाल, नारी का विवेचन, पृ. 167
3. महात्मा गांधी का संदेश, यू. एस. मोहनराव पृ. 42

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

4. मनु स्मृति, 3 / 56 ए. पृ. 113

5. जयशंकर प्रसाद, कामायनी लज्जा सर्ग, पृ. 73

6. वल्लभदास निवारी, हिन्दी काव्य में नारी, पृ. 36

7. डॉ. गजानन शर्मा, प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी, पृ. 42

8. अमर कोश, द्वितीय खण्ड, मनुष्य वर्ग।

9. डॉ. गणेशदास, स्वातंत्रयोतर हिन्दी कहानी में नारी के विविध रूप, पृ. 26

10. धर्मयुग–नारी अंक–5 मार्च सं 15 मार्च 1995: इरफाना शदर, पृ. 12

11. हंस: अक्टूबर–92, 50. प्रभा–खेतान, पृ. 75

12. राजी सेठ, दूसरे देशकाल में, पृ. 51

13. राजी सेठ, दूसरे देशकाल में, पृ. 51

14. राजी सेठ, देशकाल में, पृ. 78

15. शीलीा रजवाल, स्वातंत्रयोतर कथा साहित्य में नारी के बदलते संदर्भ. पृ. 124

16. राजी सेठ, अंधे मोड से आगे, पृ. 110

17. राजी सेठ, अंधे मोड से आगे, पृ. 117

18. वही, पृ. 118

19. राजी सेठ, यात्रा मुक्त, पृ. 40

20. राजी सेठ, यात्रा मुक्त, पृ. 44

21. राजी सेठ, यात्रा मुक्त, पृ. 49

22. राजी सेठ, अंधे मोड से आगे, पृ. 54

24. डॉ. गणेशदास, स्वातंत्रयोतर हिन्दी कहानी में नारी के विधि रूप पृ. 99

25. राजी से., दूसरे देशकाल में, पृ. 93

26. राजी से., दूसरे देशकाल में, पृ. 95

27. राजी से., यात्रा मुक्त में, पृ. 81

28. राजी से., दूसरे देशकाल में, पृ. 87

29. राजी से., दूसरे देशकाल में, पृ. 89

30. राजी से., दूसरे देशकाल में, पृ. 89

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रामदरश मिश्र की भाषा एवं शैली

डॉ. अंजली उपाध्याय

प्राचीन समय के साहित्यिक चिंतकों ने काव्य में भाषा से अधिक भाव को महत्व दिया है। इसी के साथ–साथ प्राचीन आचार्यो और साहित्यिक चिंतकों ने यह भी कहा कि भाषा भाव को अभिव्यक्त करने का मात्र एक साधन है, किंतु मानव की स्वच्छंद भावधारा के साथ–साथ भाषा का भाव भाषा के लिए जितना महत्वपूर्ण है उतनी ही महत्वपूर्ण भाषा, भाव के लिए भी है, सीधे शब्दों में तो यही कहा जा सकता है कि भाषा के बिना भाव का कोई मूर्त स्वरूप नहीं हो सकता है।

भाषा के प्रति जागरूकता का युग आधुनिक युग रहा है, उसमें भी विशेषतया छायावाद युग और उसके बाद तो सरल भाषा जो आम आदमी की भाषा हो, जिसमें जटिलता न हो। भाषा के संदर्भ मे डॉ देवराज उपाध्याय का मत है कि ''यह सच है कि भाषा अनुभूतियो की अभिव्यक्ति का माध्यम है, किंतु यांत्रिक माध्यम नहीं है वह पुनः–पुन सृजित होती है, निरंतर सामाजिक प्रयोग में आती रहने के कारण भाषा का अपना स्वरूप भी होता है, जो अपने शब्दों के भीतर अनेक

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भाव–गंध या रूप–छाया छिपाये रखती है।"[1]

वस्तुतः प्रत्येक लेखक और कवि ऐसी भाव भाषा का निर्माण करने का प्रयास करता है जो उसके भावों एवं विचारों के अनुरूप हो तथा जिसके द्वारा वह उन्हें सशक्त अभिव्यक्ति दे सके। इसके लिए भाषा का उचित रूप से सक्षम एवं समर्थ होना बहुत आवश्यक है, क्योंकि एक कवि एवं लेखक अपनी भाषा व शब्दों के द्वारा ही भावों को अभिव्यक्त कर पाता है। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने भी भाषा के स्वरूप को अभिव्यक्त करते हुए कहा है– "कृतिकार की नवीनतम विकास की दिशायें प्रमुख रूप से उसकी भाषा–प्रयोग विधि में प्रतिफलित होती हैं, साथ ही भाषा के माध्यम से किसी रचनाकार की प्रामाणिकता की परीक्षा तटस्थ एवं विश्वसनीय ढंग से की जा सकती है।"[2]

वस्तुतः भाषा जीवन पद्धति, चिंतन प्रक्रिया का अनिवार्य हिस्सा होती है और इसी कारण भाषा किसी भी देश के लिए भावनात्मक मुद्दा भी बन जाती है। निर्मल वर्मा के अनुसार–"भाषा सिर्फ विचारों, विश्वासों, सिद्धांतों के प्रकट करने का माध्यम नहीं होती, बल्कि उसमें एक जाति के सांस्कृतिक बिंब, ऐतिहासिक स्मृतियों, पारंपरिक संस्कारों के मूल स्वर अनुगुंजित होते हैं।"[3]

सुमित्रानंदन पंत का भी यही मत है कि "भाषा मानव मन की झंकार तथा मानव आत्मा के समान है। उसके महत्व को न पहचानना आँखें रहने पर भी अँधा बना रहना है, क्योंकि अपनी भाषा ही राष्ट्र के मानस में अंतदृष्टि दे सकती है।"[4]

उपर्युक्त उदाहरणों के अतिरिक्त साहित्य में भाषा के स्वरूप को प्रकट करते हुए डॉ. देवराज ने कहा है– "बड़े कवि और लेखक अपनी वाणी में किसी जाति या युग की संपूर्ण सांस्कृतिक चेतना को प्रकाशित कर देते हैं। यह इसलिए संभव होता है कि भाषा की अर्थ

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वहन क्षमता, दूसरे माध्यमों की सीमाओं से मुक्त और अपरिमित है।"[5]

उपर्युक्त सभी उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि भाषा मनुष्य की विकास यात्रा में सहायक है और भाषा ही वह संपति है जिसे अजिर्त कर मनुष्य अपने अस्तित्व को प्राप्त करता है और मनुष्यत्व की कोटि में पहुँचता है। साहित्यकार भी भाषा को माध्यम बनाकर भावों और अनुभूतियों को अभिव्यक्त करता है।

डॉ. रामदरश मिश्र के 'कथेतर गद्य सर्जनात्मक साहित्य' में भी उनके काव्य की भाँति ही गहरी संवेदना और निजता भरा भाव है। उसमें समष्टि की चेतना का शब्दांकन है। विशेष बात तो यह है कि मिश्र जी के सृजन में भारतीयता के प्रति विशेष भाव–बोध को व्यक्त करने. में उनकी सरल, सहज एवं पारदर्शी भाषा विशेष रूप से सहायक हुई है। मिश्र जी के साहित्य की भाषा–संरचना का गहन अध्ययन तथा सैद्धांतिक व व्यावहारिक विश्लेषण में, उनके साहित्य की भाषा संरचना के स्वरूप और उसके विविध संदर्भों का विवेचन आवश्यक मालूम पड़ता है, जिसकी पुष्टि आगे लिखे बिंदुओं के अंतर्गत की जा रही है।

शब्द संसार

मिश्र जी की भाषा में सर्वत्र एक परिष्कार दिखाई देता है। वह अपनी परिनिष्ठता में कहीं भी स्खलित नहीं हुई। गद्य की भाषा का यह परिष्कार ही, उसकी शक्ति का विस्तार है। उनकी भाषा में स्थानीय भाषा का प्रयोग भी देखने को मिलता है। अंग्रेजी व उर्दू शब्दों के प्रयोग ने उनकी भाषा को सहजता व स्वाभाविकता प्रदान की है। लोक–मानस और लोकचेतना की सफल अभिव्यक्ति लोकभाषा के माध्यम से हो सकती है। आत्मकथा के 'जहाँ मैं खड़ा हूँ' खंड में इस भाषा का सौंदर्य दिखाई देता है। जन भाषा के शब्दों की असीम अर्थवत्ता, व्यंजकता व संप्रेषणीयता, लोकगीतों की संगीतात्मकता, ध्वनि–बिंबों की ध्वन्यात्मकता से समन्वित उनकी

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भाषा के शब्द–संसार को निम्न रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. स्थानीय भाषा का प्रयोग
2. अंगेजी शब्द
3. उर्दू शब्द
4. तत्सम शब्द

उक्त बिंदुओं का विस्तारपूर्वक वर्णन इस प्रकार है–

1. स्थानीय भाषा का प्रयोग

मिश्र जी की भाषा में कोई कृत्रिमता अर्थात बनावट नहीं है। गाँव परिवेश की भाषा आंचलिक स्वरूप लिए हुए है जबकि शहरी पात्रों की भाषा सभ्य और संयत रूप लिए हुए है। भाषा में सम्प्रेषणीयता की अद्‌भुत ताकत सर्वत्र दिखाई देती है। इसलिए रामदरश मिश्र का संपूर्ण कथेतर गद्य साहित्य बहुत सहज और जीवन के निकट है। उन्होंने ने आम जीवन की बहुविध स्थितियों, विसंगतियों और विषमताओं का जन–जन तक पहुँचाने के लिए सहज और सरल भाषा का प्रयोग किया है। ग्राम्य अँचल में प्रयोग हुई भाषा का एक उदाहरण इस प्रकार है–

1. ''ई झूठ बोलते हैं बबुआ। रामअवध चाचा से पूछ लें, इनके यहाँ कपूर की डली पकड़ी गयी है।''[6]

2. ''मुझे बुलाया गया। मेरा तो पहले से ही जी धक्क–धक्क कर रहा थां नाम सुनते ही मैं घबरा गया। मंच पर गया, क्या पढ़ा, कैसे पढ़ा, कुछ याद नहीं, हाँ इतना भर याद है कि मैं किसी तरह अपनी कविता वहाँ फेंक–फाँककर भागा था।''[7]

उक्त उदाहरण दोनों उदाहरणों में, स्थानीय भाषा का प्रयोग दृष्टव्य है–

2. अंग्रेजी शब्द

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मिश्र जी ने अपने कथेतर साहित्य में अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग किया है, यद्यपि अंग्रजी भाषा के शब्दों की अधिकता प्रशंसनीय नहीं है, लेकिन मिश्र जी ने अंग्रेजी के शब्दों का स्वाभाविक और रचनात्मक प्रयोग किया है। कहीं–कहीं यदि अंग्रेजी के सीन पर किसी अन्य भाषा या हिंदी के शब्दों का प्रयोग किया जाए तो लेखन इतना प्रभावी नहीं बनता। उदाहरण इस प्रकार है–

1. वैसे खेलों की क्या कमी थी। बस, मन में हुलास चाहिए और हुलास अपने मन में बहुत था। चिक्का कबड्डी... आदि 'आउटडोर' खेलों से लेकर ताश,.. आदि 'इन्डोर' खेलों तक अपनी रूचि और सक्रिय भागीदारी थी।''[8]

2. ''इण्ट्रोडक्टरी भाषण दे चुकने के बाद डॉ. राय ने पूछा– ''इस कक्षा में बैठे विद्यार्थियों में से कितनों ने 'मैट्रिक' में 'फर्स्ट क्लास' पाया है?''[9]

3. ''जी–जी बहुत–बहुत धन्यवाद! अब तो आप ही लोग हमारे सुख–दुःख के साथी हैं।'' ''श्योर–श्योर।''[10]

उक्त प्रथम उदाहरण में 'आउटडोर' और 'इन्डोर' शब्द अंग्रेजी वे लिए गये हैं जिनसे बात को कहने में समरसता बनी हुई है।

दूसरे उदाहरण में 'इण्ट्रोडक्टरी' और 'फर्स्ट क्लास' शब्द भी अंगेजी के हैं तथा तीसरे उदाहरण में 'श्योर–श्योर' शब्दों का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि कहीं–कहीं अनिवार्यता के लिए प्रयोग में लाये गये अंग्रजी के शब्द अधिक अर्थवान होते हैं।

3. उर्दू शब्द

जिस प्रकार हिंदी और अंग्रेजी के शब्दों का अपना–अपना महत्व होता है उसी प्रकार उर्दू के शब्दों की भी मिठास होती है। मिश्र जी के लेखन में उर्दू का प्रयोग भी दृष्टव्य है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

1. ब्रजनाथ गर्ग बहुत मस्तमौला ओर साफ़दिल आदमी हैं। उन्होंने इम्तहान भर पत्नी को जिस आदर भाव से अपने यहाँ रखा वह अनुपम है।'' [11]

2. ''हाँ, विनीत लाल से यह हमारी आखिरी भेंट थी।'' [12]

उक्त प्रथम उदाहरण में 'साफदिल' और 'इम्तहान' तथा दूसरे उदाहरण में 'आखिरी' शब्द उर्दू के हैं जिनकी अपनी महत्ता है। मिश्र जी के लेखन में उर्दू शब्दों के प्रयोग का कारण यह भी है कि स्वतंत्रता से पूर्व उर्दू फारसी का प्रभाव शिक्षण संस्थाओं पर था और मिश्र जी ने उर्दू से मिडिल पास किया थां उर्दू के शब्द उनके लेखन में अटपटे प्रतीत न होकर सहज और स्वभाविक प्रतीत होते हैं।

उर्दू, अरबी, फारसी के रूप में 'खुशबू, 'खबर, गरीब, इंतज़ार, दुश्मन, उम्र, रोश्नी, मसलन, खूब' आदि बहुत से ऐसे शब्द हैं जो गिनाये जा सकते हैं।

4. तत्सम शब्द

मिश्र जी के कथेतर गद्य में तत्सम शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। ये शब्द उनके गद्य में भाषिक प्रवाह के बाधक नहीं बनते बल्कि नहीं बनते बल्कि अभिव्यक्ति को सरल बनाने का कार्य संपादित करते हैं। इनसे कहीं–कहीं मात्रिक सौंदर्य की सृष्टि भी हुई लगती है, इसके अतिरिक्त ये शब्द भाव–सम्प्रेषणीयता में अतिरिक्त शक्ति भर देते हैं। मिश्र जी ने तत्सम शब्दों से गद्य को एक नया रूप प्रदान किया है। अनिल कुमार शर्मा के शब्दों में– ''तत्सम शब्दों की बहुलता संप्रेषणीयता के लिए बहुत भारी पड़ती है, लेकिन मिश्र जी ने प्रारंभ से ही यह ध्यान रखा है कि जितनी तत्समता मानक भाषा के रूप में हिंदी के लिए जरूरी है, उससे अधिक न लादी जाये।'' [13]

तत्सम शब्द का प्रयोग निम्न उदाहरणों में दृष्टव्य है– ''अहमदाबाद 'प्रस्थान' कीं तैयारियाँ हो रही थीं ओर रात के दस बज

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गए थे, इसलिए हम लोगों ने वहाँ देर तक बैठना उचित नहीं समझा।'' [14]

उक्त उदाहरण में 'प्रस्थान' शब्द का प्रयोग भाव में संप्रेषणीयता में वृद्धि करता प्रतीत हो रहा है, इसके अतिरिक्त 'प्रख्यात', 'प्रशस्ति', 'संस्कृति', 'अभिजात', 'आवर्तमयी' शब्द भी उनके कथेतर गद्य में अधिकतर देखे जा सकते हैं।

उक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि मिश्र जी भाव और प्रसंगानुसार शब्दों का चयन करते हैं। उनकी भाषा का रूप आंचलिक, अंग्रेजी, उर्दू, तत्सम शब्दों से मिलकर बना है। उनका उद्देश्य आम आदमी तक अपनी बात पहुँचाना है जिसके लिए बड़ी सादगी व सरलता से वे शब्दों का चयन कर अपने गद्य को संप्रेषणीय बनाते हैं।

लोकजीवन की शब्दावली

डॉ. रामदरश मिश्र के लेखन के पीछे लोकजीवन का अपना विशेष महत्त्व है। उनके साहित्य में झाँकता लोकजीवन ही उनके साहित्य को जीवंत बनाता है। साधारण तौर पर तो मिश्र जी आंचलिक लेखक हैं। वे शहरी और ग्रामीण अंचल से जुड़े हुए हैं। उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर परिवेश के यथार्थ जीवन को उजागर किया है। उन्होंने अंचल विशेष के जीवंत चरित्रों को मूर्त करने के लिए कृत्रिम भाषा का प्रयोग नहीं किया बल्कि लोकभाषा का ही प्रयोग किया है जिससे उनका यह कथेतर गद्य जटिल न होकर सरल रूप धारण किए हुए है। जिसे आम पाठक भी समझ सकता है। लोकजीवन में भाषा की महत्ता पर प्रकाश डालती कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

''भाषा केवल यथार्थ को ढोने वाला बाहरी माध्यम नहीं हैं, बल्कि वह लोगों के सोचने–समझने, अनुभव करने की प्रक्रिया का

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक अंग है। वह कहीं अधिक भीतरी है। इसलिए एक विशेष परिवेश के लोगों के चरित्र और वहाँ की परिवेश–छवि को रूपायित करने के लिए वहाँ के लोगों की भाषा का ग्रहण अनिवार्य हो उठता है।"[15]

उपर्युक्त उदाहरण से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि ग्राम जीवन की लोक–संस्कृति, प्रकृति का विराट सौंदर्य, वहाँ की विशिष्ट जीवन–पद्धति अपनी गँवई भाषा के साथ ही सजीव लगती हैं और मिश्र जी के लेखन में यह भाषा विशेष सिद्ध होती है। एक उदाहरण इस प्रकार है–

"हाँ, मदनेश जी को मैंने कभी अपने हाथ से काम करते नहीं देखा। वे गाँव में भी पूरे वेश में निकलते थे, जूता, धोती, कुर्ता, टोपी। कभी–कभी अपने दरवाजे पर भी टोपी लगाये बैठे होते थे। जमींदार का बेटा अपने हाथ से खेती–बारी, सानी–पानी आदि का काम नहीं करेगा.. मजदूरों को गाली दे–देकर काम कराने वाले, उनसे ज्यादा मेहनत से खेत गोड़ने वाले, बीज बोने वाले, पानी चलाने वाले, कटिया करने वाले, दंवरी हाँकने वाले, अपने सिरों पर खाद, अनाज, भूसा और तरह की मोटरियाँ–गठरियाँ ढोने वाले ब्राह्मणों को इन सबसे मुक्त मदनेश जी भला कहाँ से कर्मठ और लायक व्यक्ति प्रतीत होते?"[16]

उक्त उदाहरण में मिश्र जी ने लोकजीवन की शब्दावली का बहुत ही अच्छा वर्णन किया है। 'स्मृति के छंद' संस्मरण साहित्य में 'साहित्य का जीवन' संस्मरण में मदनेश जी के चरित्र और गाँव के परिवेश से प्राप्त अनुभवों की गँवई भाषा में व्यक्त करती हुई कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

"ठीक है।" कहकर मैं रुक गया। देखा तीन–चार जवान जमदूरनें भी वहाँ बैठी थीं। मैं सामने पकती हुई फसलों का विस्तार देख रहा था। "भक्क हई बुढ़वा क्या–क्या निहार रहा है रे सखी।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लगता है अँखियों से निगल लेगा।''[17]

उक्त उदाहरण में प्रयुक्त भाषा परिवेश के मुताबिक एक ऐसी भाषा है जो सामाजिक जीवन यथार्थ को उभारने में कोई कसर नहीं रखतीं एक ऐसा ही उदाहरण इस प्रकार है– ''किसी को पीटते समय मास्टर कहता है, ''सरऊ बाप तो हल जोतता है, ये पढ़ने चले हैं।'', ''ससुर तेली–तमौली पढ़ने चले हैं, पता नहीं कोल्हू कौन चलायेगा।'' ''अरे जाओ–जाओ, तुम भी बाप की तरह भीख मांगों, पढ़ाई–लिखाई तुम्हारे वश की नहीं..।''[18]

उपर्युक्त उदाहरण में अध्यापकों के अनुचित व्यवहार को मिश्र जी ने व्यक्त किया है जिसके कारण न जाने कितने विद्यार्थियों का शिक्षा से संबंध टूट गया और वे अपने पुश्तैनी काम में लग गये।

मिश्र जी ने लोक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को अपने शब्दों की आवाज प्रदान की है। केवल ग्राम्य क्षेत्र ही नहीं बल्कि शहरों के लोक जीवन की अभिव्यक्ति भी उनके लेखन में सहज है। 'बनारस' की लोक संस्कृति ने मिश्र जी को बहुत प्रभावित किया है जिसका वर्णन उनकी आत्मकथा 'रोशनी की पंगडंडियाँ' में देखने को मिलता है। एक उदाहरण इस प्रकार है–

''साँझ के झूटपुटे में गंगा की धारा में उतरायी हुई नावों पर से उठता हुआ कोई गीत, अकेले या पंक्तियों में तैरते हुए दीप, दीपों की ज्योतियों से अँधेरे के पट पर लिखी जाती सौंदर्य–मंगल की पंक्तियाँ, नहाते हुए लोग, पंडों की आसनियाँ, यहाँ वहाँ गोलगप्पे और चाट आदि की छोटी–छोटी साफ–सुथरी दुकाने, मंदिरों में बजते हुए शंख–घंटे–घड़ियाल और सबके ऊपर मृदंग और झाँझ की धुन पर नाचते गाते चैतन्य संप्रदायी बंगाली भक्त..।''[19]

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि मिश्र जी ने लोकजीवन की शब्दावली को अपने कथेतर साहित्य में उजागर

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किया है। उन्होंने भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति को सरल एवं सहज भाषा में पाठक तक पहुँचाया है और समाज के यथार्थ को अभिव्यक्ति दी है।

पारदर्शिता

मिश्र जी का साहित्य उनके व्यक्तित्व का ही प्रतिबिंब है, अतः पारदर्शिता उनके साहित्य की प्रमुख विशेषता है। मिश्र जी की भाषा बिंबधर्मी एवं प्रतीकधर्मी है, किंतु इसके बावजूद भी उनकी भाषा का सबसे बड़ा गुण पारदर्शिता है। जिए हुए परिवेश पर दृष्टि केंद्रित करने के कारण उनके साहित्य की भाषा भी जीवंत भाषा है। उनके साहित्य में गाँव, परिवार, खलिहान, खेत, नदी, तालाब, पेड़, सड़क, दुकान, बाजार, पशु, पक्षी, पर्व, उत्सव, मौसम आदि सब समाहित हैं। मिश्र जी अपने परिवेश से कभी नहीं कटते इसलिए प्रकृति के विभिन्न सुंदर–असुंदर रूप उनके कथेतर गद्य में देखने को मिलते हैं। उदाहरण स्वरूप कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

"मैंने सावन में बनारस को देखा–प्राकृतिक हरीतिमा और मानवीय हरीतिमा के बीच बनारस सावनमय हो गया था। उनये–उनये बादल, रिमझिम–रिमझिम वृष्टि, जगह–जगह भीगते और झूमते हरे–हरे पेड़ और यहाँ–वहाँ पेड़ों की डालों में या ओसारों में पड़े हए झूले, धानी परिधान में झूले झूलती तथा कजली गाती युवतियाँ।"[20]

उपर्युक्त उदाहरण में प्रकृति के मनोरम रूप को मिश्र जी ने बड़े ही पारदर्शी ढंग से प्रस्तुत किया है।

मिश्र जी के साहित्य में समाज, समाज के रीति–रिवाज, रंग–ढंग, आचार–विचार, प्रथाएँ, रूढ़िगत मान्यताएँ भी जुड़ी होती हैं। नारी जीवन पर प्रकाश डालते हुए उनहोंने लिखा है–

"हर बात में उसकी आलोचना होती है, हर काम में नुक्स

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निकाला जाता है। और जैसे पूरा एक अजनबी परिवेश उसका इम्तहान लेता है और वह उस परिवेश में गिरती–पड़ती अपने भरे–पूरे मायके को याद करती है। धीरे–धीरे उस अजनबी परिवेश की चोट सहते–सहते उसे अपना लेती है। यही है उसकी नियति, यही है उसका घर, चाहे जैसा भी हो, यहाँ से कहाँ जाना?"[21]

उपर्युक्त उदाहरण में मिश्र जी ने लड़की के जीवन की व्यथा और समाज के विचारों, रूढ़ियों को उजागर किया है। इतना ही नहीं, उनका पारदर्शी दृष्टिकोण उनकी सरल–सहज भाषा से स्पष्ट होता है और अत्यंत रोचक बन पड़ता है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मिश्र जी की भाषा सर्वत्र भाव एवम् विचारों के अनुरूप है और उन्होंने अपनी भाषा के माध्यम से कथ्य को सशक्त अभिव्यक्ति देने में पूर्ण सफल हुए हैं। स्थानीय शब्दों व अंग्रेजी, उर्दू के शब्दों के प्रयोग ने भी उनकी भाषा को सहजता व स्वाभाविकता प्रदान की है। लोकमानस और लोक चेतना की अभिव्यक्ति लोकभाषा के माध्यम से ही संभव है और मिश्र जी को इसमें पूर्ण सफलता मिली है।

सन्दर्भ

1. डॉ. देवराज उपाध्याय, डॉ. रामदरश मिश्र, हिंदी समीक्षाः स्वरूप और संदर्भ
2. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदीः भाषा और संवेदना, पृ. 1
3. अनुशीलन, हिन्दी भाषा पर पड़ रहे दबाव की मीमांसा, लेख–प्रो. सदानंद प्रसाद गुप्त, पृ. 13–14
4. पंत ग्रंथावली, भाग–6, पृ. 442
5. डॉ. देवराज, साहित्य समीक्षा और संस्कृति बोध पृ. 48
6. रामदरश मिश्र रचनावली, खण्ड–आठ, सं. रामदरश मिश्र एवं स्मिता मिश्र, पृ. 62
7. रामदरश मिश्र रचनावली, खण्ड–आठ, सं. रामदरश मिश्र एवं स्मिता

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

मिश्र, पृ. 115
8. रामदरश मिश्र रचनावली, खण्ड–आठ, सं. रामदरश मिश्र एवं स्मिता मिश्र, पृ. 30
9. रामदरश मिश्र रचनावली, खण्ड–आठ, सं. रामदरश मिश्र एवं स्मिता मिश्र, पृ. 212
10. रामदरश मिश्र रचनावली, खण्ड–आठ, सं. रामदरश मिश्र एवं स्मिता मिश्र, पृ. 280
11. रामदरश मिश्र रचनावली, खण्ड–नौ, सं. रामदरश मिश्र एवं स्मिता मिश्र, पृ. 90
12. रामदरश मिश्र रचनावली, पड़ोस की खुशबू, सं. रामदरश मिश्र एवं स्मिता मिश्र, पृ. 150
13. समकालीन गीति काव्य के सम्बन्ध में रामदरश मिश्र के गीतों का कथ्यगत और शिल्पगत अनुशीलन : अप्रकाशित शोध प्रबंध– अनिल कुमार शर्मा, पृ. 84
14. रामदरश मिश्र रचनावली, स्मृतियों के छंद, सं. रामदरश मिश्र एवं स्मिता मिश्र, पृ. 82
15. कथाकार रामदरश मिश्र सूर्यदीन यादव, पृ. 73–74
16. रामदरश मिश्र रचनावली, स्मृतियों के छंद, सं. रामदरश मिश्र एवं स्मिता मिश्र, पृ. 13
17. रामदरश मिश्र रचनावली, स्मृतियों के छंद, सं. रामदरश मिश्र एवं स्मिता मिश्र, पृ. 18
18. रामदरश मिश्र रचनावली, खण्ड–आठ, सं. रामदरश मिश्र एवं स्मिता मिश्र, पृ. 18
19. रामदरश मिश्र रचनावली, खण्ड–आठ, सं. रामदरश मिश्र एवं स्मिता मिश्र, पृ. 202
20. रामदरश मिश्र रचनावली, खण्ड–आठ, सं. रामदरश मिश्र एवं स्मिता मिश्र, पृ. 202
21. रामदरश मिश्र रचनावली, खण्ड–आठ, सं. रामदरश मिश्र एवं स्मिता मिश्र, पृ. 190

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की मानवी–दृष्टि

डॉ. अर्चना आर्य

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कारयित्री और भावयित्री प्रतिभा से सम्पन्न रचनाकार है। हिंदी के समसामयिक रचनाकारों और चिन्तकों में उनका अप्रतिम स्थान रहा है। समकालीन मानव चेतना के समक्ष उनके जो महत्वपूर्ण स्वरूप उभरे, उनमें से उनका कौन–रूप कम आकर्षक था, यह कहना कठिन है। रचनाकार के रूप में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी उपन्यास, निबंध और कविता सभी स्तरों पर जुडे, तो आचार्य के रूप में मानवीय संस्कृति के व्याख्याता, इतिहास के अनुसंधाता और साहित्यगत शील और सौंदर्य के विशिष्ट रूप का उद्‌घाटन करने वालों में भी उन्होंने अपनी साख पैदा की है। उन्होंने अपने पांडिन्यपूर्ण चिंतन, वैदुष्यापूर्ण लेखन और वैदग्ध्यपूर्ण भाषण से सभी को सर्वाधिक प्रभावित किया है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की रचनाएँ साहित्य के क्षेत्र में एक विशेष दृष्टि लेकर चली, जिसे मानवतावादी दृष्टि कहा गया है। कवीन्द्र रवीन्द्र के साहचर्य से उन्हें इस बात का ज्यों ही आभास हुआ कि मनुष्य को केवल जाति, सम्प्रदाय और देशकाल जैसे संकुचित

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सीमाओं से ही ऊपर नहीं उठाना होगा, अपितु उसे उदात्त गुणों से भी जोड़ना आवश्यक होगा, जिनके बिना वह न व्यष्टि के स्तर पर और न समष्टि के स्तर पर ही महान हो सकता है। अपनी इस भावना को आचार्य द्विवेदी ने अपने उपन्यासों, अपने विबन्धों और अपनी कविताओं में इतनी सहजता से आने दिया कि रचनाएँ मोहक और सहज प्रभाव डालने वाली बन सकी। आचार्य द्विवेदी अपनी रचनाओं के बीच उन्हें ऐसे रूप में संजोते, कि ऐसा कहीं नहीं लगता कि यह दृष्टि उन पात्रों पर आरोपित है। मानव के विकास में अवरोध डालने वाली बातों को वे न तो पसंद करते हैं, और न अपनी रचनाओं में आने देते हैं। 'विचार और वितर्क' नामक पुस्तक के एक निबन्ध में उन्होंने स्पष्ट ही स्वीकार किया है कि "हमारा परम लक्ष्य मनुष्यत्व है।"[1] यह मनुष्यत्व ही मनुष्य को (व्यक्ति मनुष्य को नहीं अपितु समष्टि मनुष्य को) आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक शोषण से मुक्त करने में समर्थ होगा। आचार्य द्विवेदी की दृष्टि में असली मानवीय संस्कृति, मनुष्य की समता और सामूहिक मुक्ति की भूमिका पर खडी होगी।" उनका यह भी विचार है कि ऐसी संस्कृति को विकसित करने में आज के मनुष्य को उदार और व्यापक भूमिका निभानी होगी।"[2] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने साहिय के माध्यम से जो कुछ भी दिया उसका उनकी दृष्टि में केवल एक प्रयोजन था–मनुष्य को संकीर्णता और मोह से ऊपर उठाकर उदार, विवेकी और सहानुभूति पूर्ण बनाना।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का रचनाकार जहाँ एक ओर मानवता के विविध पक्षों को उद्घाटित करने के लिए भौतिक वस्तु–सत्य से जुड़ता है, वहाँ उसकी दृष्टि मानव चित्र के भीतर तरल रूप में विद्यमान भाव–सम्पदा को नजर अन्दाज़ नहीं करती है। उनकी दृष्टि में वस्तु का सम्बन्ध यदि जीवन के यथार्थ की प्रथम इकाई है, जहाँ से मनुष्य की प्रज्ञा के लिए तर्क संगत उपादान सुलभ होते हैं, तो भाव–सम्पदा का भी अनुभूति की चरम इकाई से सम्बन्ध जुडता है। वस्तु जीवन के लिए आवश्यक है, परन्तु उसके साथ

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मानसिक औदार्य, बौद्धिक निर्लिप्तता और चित्र की आह्लादकता भी आवश्यक है। इसीलिए आचार्य द्विवेदी यह स्पष्ट स्वीकार करते हैं कि भाव मूलतः मानवीय विश्वास के साथ जुड़ता है और विश्वास का सीधा सम्बन्ध मानवीय चित से है। उनके अनुसार विभिन्न युगों में साहित्यिक साधनाओं के मूल में कोई–न–कोई व्यापक मानवीय विश्वास होता है। आधुनिक युग का यह व्यापक विश्वास मानवतावाद है।....... नवीनमानवतावादी विश्वास की सबसे बड़ी बात है कि इसकी ऐहिक दृष्टि लिया जाए और मानवतावादी विश्वास को मनुष्य चित की तरलता से जोडा जाए और इन दोनों के परिप्रेक्ष्य में आचार्य द्विवेदी के रचनात्मक साहित्य को देखने का श्रम किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि आचार्य द्विवेदी ने अपने उपन्यासों और निबन्धों में रचना और अनुसंधान के स्तर पर वस्तु से भाव तक की कुशल यात्रा की है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी नाना प्रकार के द्वन्द्व और संघर्षों में जूझते हुए मनुष्य को देखकर निराश नहीं होते। वे इस बात से तनिक भी कुंठित या अवसन्न नहीं होते कि मनुष्य प्रयत्न करने पर भी उच्चतर भावभूमि पर नहीं पहुँच पा रहा है। वह युद्ध और लोभ, मोह में ग्रस्त है। इतिहास के परिप्रेक्ष्य में मनुष्य और मानवता को रखकर वे कहते हैं कि– ''मनुष्य थका है, पर रूका नहीं है।'' वह बढ़ता जा रहा है। इतिहास के अवशेष उसकी विजय–यात्रा के पद चिह्न हैं।'' इन पद चिह्नों में मानवता की छाप देखने का उनका आग्रह है।

रचनाकार का दायित्व असाधारण होता है। वह जो कुछ लिखता है उसके पीछे उसकी मानसिक तथा वैचारिक उथल–पुथल होती है, जिसका सम्बन्ध परम्परित मूल्यों और वर्तमान की प्रचलित धारणाओं के बीच से रास्ता ढूँढने से होता है। रचनाकार ऐसे क्षणों में केवल इनमें से किसी एक दृष्टि को न चुनकर ऐसे बिन्दु का चुनाव करना चाहता है जो उसकी रचना को बहुप्रचलित ओर कम महतवपूर्ण धारणाओं से अलगकर अप्रितम महत्व के साथ सम्बद्ध कर

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सके। यह स्वाभाविक है कि ऐसी अभिव्यक्ति के लिए उसे चिरपरिचित साधनों के माध्यम से अपरिचित विचार और भावभूमियों में संचरण करना होता है जिसके द्वारा वह मनुष्य के लिए शिव और सौंदर्य से युक्त साहित्य दे सकता है। आचार्य विवेदी ने अपने रचनात्मक साहित्य में इसलिए चिरपरिचित माध्यमों की सहायता से अपरिचित और अत्यन्त परिचित भूमियों तक पद–संचार किया है। अतीत से सामग्री लेकर मनुष्य जाति की समसामयिक और अनागत की समस्याओं को उभारकर व्यापक समाधानों का प्रयत्न करने में उन्होंने अतीत और वर्तमान के चिर परिचित तथ्यों और वस्तुओं से सम्बद्ध धारणाओं का परिष्कार, अपेक्षित अर्थों का विनिवेश और नवीन सम्भावनाओं का समावेश किया है। यद्यपि बाणभट्ट, सातवाहन और गोपालदारक अतीत के ऐतिहासिक पात्र है। उनकी स्थितियों का परिश्रम पुराने साहित्य में यत्र–तत्र उपलब्ध भी हो जाता है। परन्तु द्विवेदी जी की रचनाओं में उन्हें जो रूप मिला है वह निश्चित ही उनके रचनाकार के द्वारा गढ़ा गया रूप है जिसके माध्यम से उन्होंने अपने अपेक्षित उद्देश्य मानवतावादद चिन्ताधारा को सामने रखा है। आचार्य द्विवेदी ने यह भी स्वीकार किया है कि साहित्य प्रकाश का रूपान्तर है। उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा ऐसे ही ही आलोकपुंज को समसामयिक और अनागत के पाठकों के लिए सुलभ कराने का प्रयास किया है।

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की रचनात्मक कृतियों को देखने से ऐसा लगता है कि वे आवश्यक भावों और विचारों को रूपापित करने की दिशा में बढ़ते समय कल्पनाओं और संभावनाओं के आकाश में उड़ान भरते हैं। ये उड़ाने इस तथ्य का प्रमाण है कि अशक्त य अक्षम रचनाकार वेसी उड़ानों से सामान्यतः नहीं जुड़ सकता। उनके उपन्यासों और निबन्धों में यह सत्य स्पष्ट देखा और परखा जा सकता है। ऐसे स्थानों पर रचनाकार के प्रयोजन के अनुकूल कल्पनाओं और संभवनाओं का विचित्र और विश्वसनीय स्वरूप देखने को मिलता है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में बाणभट्ट

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

और हर्ष आदि के अतिरिक्त सारे पात्र, सारी कथावस्तु और सारी परिस्थितियाँ उनके कल्पनाशील मस्तिष्क की उपज हैं। 'चारू चन्द्रलेख' में लोक प्रचलित अनुश्रुतियों, किम्वदन्तियों को ऐतिहासिक फलक के आधार पर रूपायित करने की चेष्टा आचार्य द्विवेदी जैसे समर्थ रचनाकार की सम्भावक प्रज्ञा का कार्य हो सकता है। 'पुनर्नवा' का ऊपरी ताना–बाना मृच्छकटिक से सूत्र अवश्य लेता है लेकिन बाकी सब का सब उनके उर्वर मस्तिष्क की कल्पना से सम्बद्ध है। 'अनामदास का पोथा' का संग्रंथन भारतीय उपनिषद् विद्या से उपकृत होता हुआ भी कितनी दुस्संधेय ग्रन्थियों और वैचारिक मान्यताओं को समेटता हुआ आवश्यक आस्वादी की भावना को समाहित करता चलता है, उसके पीछे उनकी महतर मेघा का पद–संचार ही तो है और उनके ललित निबंधें में तो यह चीज और भी खुलकर सामने आई है। इस प्रकार आचार्य द्विवेदी का रचनात्मक साहित्य कल्पनाओं से सम्भावनाओं तक के अपेक्षित सहकार से विचित्र और आकर्षक रूप ले पाया है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की दृष्टि में, साहित्य एक निश्चित उद्देश्य की ओर साहित्यकार की मानस–यात्रा है और उसका लक्ष्य है मनुष्य जीवन के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करके मनुष्यता को वास्तविक लक्ष्य तक ले जाने का संकल्प, मनुष्य के दुखों को अनुभव करा सकने वाली दृष्टि की प्रतिष्ठा और ऐसे दृढ़चेता आदर्श चरित्रों की सृष्टि जो दीर्घ काल तक मनुष्यता को मार्ग दिखाते रहें।[4]

आचार्य द्विवेदी की धारण के अनुसार साहित्य मनुष्य को सम्पूर्ण मनुष्य बनाने की दृष्टि का संकल्प लेकर चलने वाली वाङ्मय विद्या है, क्योंकि प्रत्यक्ष दृष्टि में मनुष्य से बढ़कर कुछ नहीं है। सारा जड़ और चेतन समुदाय मानव की विजय–यात्रा का सहचर हो सकता है। मनुष्य में भौतिकता के साथ–साथ दिव्यत्व भी छिपा है। यदि भौतिकता की ओर मनुष्य का झुकाव हुआ तो वह अन्य प्राणियों से अपनी विशिष्ट अर्थवत्ता सिद्ध करने में असमर्थ हो जाएगा। अतः

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मनुष्य के भीतर छिपी हुई दिव्यता का अनुसंधान और उसे सहज भाषा में मानव तक पहुँचाने का कार्य ही काव्य का, सबसे बड़ा उद्देश्य है। मनुष्य में जो मनुष्यता है, जो उसे पशु से अलग कर देती है, वही आराध्य है। यदि मनुष्य को संस्कृति के प्रशस्त राजमार्ग पर अग्रसर होना है तो उसे सौ बार सोच विचार कर अपना सांस्कृतिक पथ निश्चित करना होगा। मनुष्य को अज्ञान, मोह, कुसंस्कार और परसुखापेक्षिता से बचाना ही साहित्य का वास्तविक लक्ष्य है। जो मनुष्य इनसे बचकर शुद्ध संस्कार, स्वतंत्रता, विमल, विवेक और समता के मार्ग पर आरूढ़ होता है, वही सुसंस्कृत कहलाता है।

आचार्य द्विवेदी ने अपने रचनात्मक साहित्य के द्वारा इस उद्देश्य को अधिक सजग रूप में निभाने का प्रयत्न किया है। कहने की पद्धति से विभिन्न कृतियों में अन्तर हो सकता है और है, परन्तु सामान्यतः कहीं भी उन्होंने अपने रचनाकार को इस सीमा के उल्लंघन का अवसर नहीं दिया है। यही कराण है कि वहाँ यदि इस स्तर के विपरीत कोई पात्र आया है तो वह केवल व्यंग्य और विनोद की दृष्टि से ही, जो द्विवेदी जी की मनोरंजर एवं विनोद–प्रिय प्रकृति का परिचय देकर चुपचाप खिसक जाता है। अन्यथा प्रायः सम्पूर्ण रचनाएँ गंभीर, संकीर्णता मुक्त, सत्वगुण से सम्पन्न और संवेदनशील दायित्व से भरी हुई हैं।[5]

निःसन्देह आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का साहित्य मानवीय चिन्ता से ओतप्रोत है और मनुष्य को केन्द्र में रखकर चलता हैं किन्तु मनुष्य का मानवत्व तो तभी सम्पूर्ण होता है जब वह आध्यात्मिक चेतना के स्तर पर भरा–पूरा हो सके। मानव–चरित्र को आचरण के स्तर पर उठाने की बात विविध संस्कृतियों में बार–बार कही गई है, किन्तु आचरण सिद्धान्त के पीछे भी कुछ छिपा है। आचार्य द्विवेदी की अनुसंधानपरक दृष्टि इस ओर गए बिना नहीं रही है और उनका निष्कर्ष था कि जो आचरण चिन्मुख है वही श्रेष्ठ है। उनकी दृष्टि में जिन प्रयत्नों से मनुष्य का चिन्मय स्तर प्रभावित होता है वह अधिक महत्वपूर्ण है। महत्वपूर्ण आचारण ऐसे ही महत्वपूर्ण प्रयत्नों का नाम

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है। अतः ऐसे आचरणों के प्रति मानव समष्टि में आस्था को जागृत रखना साहित्य का प्रमुख कार्य है। यदि साहित्य इस प्रकार की आवश्यकता से नहीं जुड़ता तो वह अपने उद्देश्य से वंचित हो जाता है। क्योंकि मनुष्य की सम्पूर्णता ही उसका मूल उद्देश्य है। तभी तो मनुष्य का समस्त आहार–विहार और समस्त मन प्रायः चिन्मुख होकर सार्थक होता है।[6]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इतिहास से रस लेते हुए अपने साहित्य के माध्यम से कल्पनाओं और संभावनाओं के आधार पर जो कुछ दिया है उसमें मात्र किस्से कहानियाँ अथवा मन–गढ़न्त विचार नहीं है, अपितु सत्वचित से बहुत कुछ ऐसा कहने का प्रयास है, जो पाठक के सामने मनुष्य के चिन्मय स्तर के उद्‌घाटन का सार्थक प्रयत्न है। उस स्तर को सामने लाने के लिए ही आचार्य द्विवेदी ने वास्तव में वाड्‌मय की दीर्घ और दुर्गम घाटियों को झाँक जाने का कष्ट उठाया है। उनसे प्राप्त तथ्यों और अपेक्षित कल्पनाओं तथा सम्भावनाओं के सहयोग से जो कुछ वे सामने ला सके, उसका एक ही लक्ष्य है– मनुष्य, एक ही स्वर है– सम्पूर्ण मनुष्यता का उद्‌गीथ और एक ही परिणति है–मनुष्य में चिन्मयता का स्फुरण।

साहित्य की रचना में उसकी कलात्मक साधना का काफी महत्व होता है और यह महत्व बहुत कुछ उसमें निहित सौंदर्य से सम्बद्ध होता है। रचना में शिवत्व के साथ सौंदर्य का अपेक्षित सहकार आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी होता है। महतर उद्देश्य की अभिव्यक्ति यदि ललित होती है, तो वह लक्ष्य की तरह मनोहारिणी होती है क्योंकि उसका एक कार्य सहृदय चित की अपवर्जकता भी है। उसके न होने पर रचना का लक्ष्य पाठकों तक नहीं पहुँच पाता है। इसी कारण विशिष्ट रचनाकार अपनी रचना में ऐसे ललित तत्वों का सहज रूप में विनिवेश करता है जो अनायास पाठक को आकृष्ट कर सकें।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का साहित्य अपनी लालित्य योजना के कारण भी महत्वपूर्ण बन गया है। कालिदास की लालित्य

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

योजना के रचनाकार और 'लालित्यतत्व' नामक शोधपत्र के लेखक आचार्य द्विवेदी को यह अच्छी तरह मालूम था कि रचना में अपेक्षित सौंदर्यमय दृष्टि केवल विचार, कल्पना और तथ्य के स्तर पर ही नहीं बल्कि पद और पदार्थ के विभिन्न स्तरों पर भी आवश्यक है। इसी करण आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी रचनाओं में मानवकृत कलाओं को मानव सापेक्ष लालित्य के आधार पर रचने का प्रयास किया है। उनकी दृष्टि में मनुष्य को, मनुष्य की दृष्टि से समझने और बूझने से लेकर उसके द्वारा अन्वेषित सौंदर्य के प्रतिमानों का आधार भी अपेक्षित है क्योंकि शेष सृष्टि का केन्द्र स्वयं वही है। इसीलिए मानव की मंगल साधना सौंदर्यमय रचना के द्वारा सामने तो लायी जा सकती है किन्तु स्वयं सौंदर्य को प्रधानता देकर शिवत्व की गौणता उन्हें पसन्द नहीं है। अपने 'लालित्य तत्व' नामक शोध–पत्र में उन्होंने इसे स्पष्ट रूप में स्वीकार किया है।[7]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का रचनाकार सहज वैचारिकता और सहज अनुभूति का रचनाकार है। वह बड़ी से बड़ी बात और गूढ़ से गूढ़ अनुभूति को सहज भाषा में आकार देने में निपुण है। मानवीय संस्कृति के भावनात्मक और वैचारिक पक्षों के उद्घाटन की ओर चलते समय जब वह विस्तार करता है तो पाठक शीघ्र ही उसके आगोश में आ जाता है, किन्तु जैसे–जैसे रचनाकार आगे बढ़ता है तब पाठक अपने को एक ऐसी सहज वैचारिक और भावनात्मक ऊंचाई पर पाता है कि उसका भटकाव के प्रति पश्चाताप उसे सहज और महत्वपूर्ण अनुभूतिक सत्य से जोड़ देता है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने संस्कृति को देश ओर काल की सीमाओं से ऊपर रखने के लिए कहा है कि "जिसे हम संस्कृति कहते हैं वह सम्पूर्ण समष्टि मानव के कल्याण के लिए है क्योंकि वह निर्मात्री शक्ति है, अतः बहुत–सी चीजों को जो सड़ी–गली हैं, छोड़ती जाती है और जो नए क्षेत्र में आती है उन्हें ग्रहण करती है। केवल विचार–संस्कृति ही संस्कृति नहीं है, विचारों को जिस रूप में हम प्रस्थापन करते हैं, बुद्धि ग्राह्य, इन्द्रिय गाह्य और मनोग्राह्य बनाते

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

हैं वही संस्कृति है।"[8] अतः संस्कृति मनुष्य के चित के संस्कार का परिणाम है। जो व्यक्ति अपने व्यवहार, आचरण, लेखन, भाषण, चिन्तन और मनन में सत्वगुण को स्थान देता है, जो अपने चारों ओर फैले जन–समूह को प्यार और ममता से देखता है, जो विश्व के सभी धर्मों और जातियों के मनुष्यों को आदर और समत्व देता है, वह संस्कृति और सभ्यता का आदर्श होता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने साहित्यकार के स्तर पर जिस रचना धर्मिता को स्वीकार किया था वह भारतीय जन–मानस के साथ एकात्म हो सकी थी। उन्होंने मनुष्य के सुख–दुख, द्वन्द्व–संघर्ष, आवेग–संवेग, उत्थान–पतन को उसकी विजय–यात्रा के रूप में देखा और उसका ऐसा सटीक और सजीव वर्णन किया कि मनुष्य अपने को प्रत्यक्ष पहचान सके। उनके समकालीन लेखकों में प्रेमचंद को छोड़कर मनुष्य के इतने समीप और कोई नहीं पहुँच सका।[9] राष्ट्रीय ओर सांस्कृतिक चेतना का स्वर छायावादी कवियों में भी था और 'प्रसाद' ने उसे अपेक्षाकृत ऊँचे स्वर से मुखरित भी किया था किन्तु मानव की साहित्य में जैसी प्रतिष्ठा आचार्य द्विवेदी जी कर सके वैसी और कोई नहीं कर सका। आचार्य शुक्ल और आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने अपनी समीक्षाओं में सौंदर्य और सौष्ठव के साथ सांस्कृतिक मूल्यों की ओर इंगित किया, भारतीय संस्कृति के भास्वर बिन्दुओं को उभारा भी किन्तु मानव–महिमा का उद्‌घोष वे भी नहीं कर सके। समकालीन लेखकों ने अपनी श्रेष्ठ रचनाओं से प्रशंसा अवश्य पाई, किन्तु सार्वजनिक हृदय का स्नेहपूर्ण आतिथ्य आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और प्रेमचन्द को ही प्राप्त हुआ।

प्रेमचंद ने शोषित–दलित वर्ग की वेदना को वाणी का स्पन्दन दिया है तो द्विवेदी जी ने मनुष्य मात्र के महत्व, उसके दीर्घकालीन संघप्र एवं विजय–यात्रा का उमंग और उल्लास की वाणी में वर्णन किया है। उनकी वाणी ताप तप्त धरती पर बरसने वाले सहज जलधार के समान थी। वस्तुतः आचार्य द्विवेदी सच्चे साहित्य–सृष्टा थे, वे संस्कृति के प्रतीक और आख्याता थे। वे अत्यन्त सहज, सरल,

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निष्कपट, मन्द–सुंगध मलय–पवन के महामानव थे। उन्होंने भारतीय और मानव–संस्कृति को युग–युग के लिए समृद्ध किया है।

संदर्भः–

1. विचार और वितर्क पृ. 92–93
2. साहित्य का मर्म पृ. 153
3. विचार और वितर्क पृ. 90
4. साहित्य–सहचर पृ. 20
5. वही पृ. 69
6. सहज साधना पृ. 101
7. परिशोध (अंक–30) पृ. 46
8. वहीं पृ. 9
9. वही पृ. 10

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नागर जी के उपन्यासों की नारियाँ: मनोवैज्ञानिक संदर्भ

डॉ. (श्रीमती) सविता मिश्र

मनोविज्ञान के यों तो अनेक सम्प्रदाय हैं, परन्तु इनमें तीन प्रमुख सम्प्रदाय हैं–

(1) मनोविश्लेषणवादी सम्प्रदाय, (2) सम्पूर्णतावादी सम्प्रदाय, (3) आचरणवादी सम्प्रदाय।

1. मनोविश्लेषणवादी सम्प्रदाय: इसमें मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चार बातें प्रमुख हैं– (क) मानव जीवन की प्रक्रियाओं के मूल में काम–मूलक ग्रन्थि (लिबिडो) होती है। (ख) मानव के मानसिक व्यापार के तीन स्तर हैं– (1) अचेतन, (2) अवचेतन (3) चेतना (ग) मानव मनोवृतियों के दो विरोधी वर्ग हैं– (1) जीवन वृति वर्ग, (2) मरणवृति वर्ग (घ) मानव मन के चेतन और अचेतन मध्यवर्ती अवस्था के तीन सोपान हैं– इद, ईगो और सुपर ईगो – जिन्हें हिन्दी में क्रमश: 'केवल स्वत्व' और 'उपरिस्वत्व' कहा गया है। यह विवेचन प्रयड द्वारा फायड गया है।1

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक अन्य दार्शनिक युग ने मानव समुदाय को दो भागों में बाँटा है– (1) बर्हिमुखी मानव, (2) अन्तर्मुखी मानव।

2. सम्पूर्णतावादी सम्प्रदायः इसके अनुसार मनोविज्ञान शास्त्रयों की धारणा है कि मानव का व्यक्तित्व यद्यपि खण्ड–खण्ड या एकांगी होता है, फिर भी उसे विभिन्न कोणों से समग्र रूप में देखना चाहिए।

3. आचरणवादी सम्प्रदायः अमेरकिा के वाटसन और रूप के पावलन की मान्यता है कि मनोविज्ञान का प्रतिमाप मनुष्य के वाह्य आचारण और शारीरिक अनुभावों पर विचार करता है। सामान्यतः साहित्यकार निम्नांकित रूपों में अपने पात्रों में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों की अवतारणा करता है– (1) मन के चेतन व अचेतन स्तर, (2) चितवृतियों का विरोध एवं दमन, (3) लिबिडो या काममूलक ग्रन्थि (4) मन के तीनों स्तरों का विवेचन (5) उदात्तीकरण (6) सम्मोहन (7) असाधारण चित्रवृत्तियाँ।

नगर जी ने अपने नारी पात्रों के चित्रण में न्यूनाधिक सभी प्रकार की मनोवैज्ञानिक स्थितियों का चित्रण किया है।

अमृतलाल नागर के नारी–पात्रों में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों की अवतारणा

1. मन के अचेतन और चेतर स्तरः नगर जी के प्रायः सभी नारी–पात्र मानवीय–वृतियों से युक्त दिखाई देते हैं। उन्होंने अपनी औपन्यासिक कृतियों में सभी नारी–पात्रों का चरित्रांकन यथार्थ के धरातल पर किया है। कई बार ऐसी स्थिति आ जाती है कि नारी–पात्र चेतन–स्तर पर जो सोचते हैं, अचेतन मन उन्हें उससे सर्वथा विपरीत स्थिति में पहुँचा देता है। उदाहंरणार्थ– ''बूँद और समुद्र'' की ताई अपने वाह्य रूप में अत्यन्त कठोर दिखाई देती हैं। अपनी एकमात्र बिटिया की मृत्यु से क्षुब्ध होकर वह गर्भवती स्त्री पर टोने–टोटके किया करती हैं, किन्तु उनके अचेतन मन में मातृत्व एवं वात्सल्य का स्त्रोत निरन्तर प्रवाहित होता रहता है। इसी के

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परिणामस्वरूप वे बिल्ली के बच्चों के प्रति अपने हृदय का वात्सल्य उँडेलती रहती है।[2] जीवन–पर्यन्त सुख से वंचिता ताई रूग्णावस्था में अपने पति की हत्या हेतु मारण–तन्त्र सिद्ध कर मूठ भी चलाती है, पर अन्त मं उन्हें अपना वह कृत्य अनुचित प्रतीत होता है। चतन–अचेतन के द्वन्द्व से जूझती ताई अन्ततः मन्त्र को अपने ऊपर ही लेती हैं– ''अब मरन किनारे किसी का बुरा न चेतूँगी।''[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि नागर जी ने ताई का चरित्रांकन अत्यन्त मनोवैज्ञानिक आधार पर किया है। ''समग्रतः ताई का चरित्र गतिशील और गहरे मनोवैज्ञानिक तानों–बानों से चुना गया प्रभावी चरित्र है।''[4]

इस उपन्यास की वनकन्या भी चेतन–अचेतन के द्वन्द्व के मध्य झूलती दिखाई देती है। सज्जन के सम्पर्क में आने पर उसका अचेतन–मन सज्जन के प्रति सहज प्रेम और आकार्षण से युक्त उठता है, किन्तु चेतन मनःस्थिति, पुरुषों के प्रति घृणा हृदय में जन्में प्रेम व आकर्षण पर अंकुश लगा देती थी– ''उम्र के तकाजे से पुरुष के अंग–अंग की स्वाभाविक इच्छा कहीं उसके मन में भूखी रेंगती थी, किन्तु दूसरी ओर पिता की काम–विकृतियाँ, पुरुष की लोलुप–दृष्टि उसे विपरीत दिशा में मोड़ देती थी और उसके अन्दर का स्वाभिमान पुरुषों के खिलाफ विद्रोह कर उठता है।''5 यही वनकन्या अपने मन के आकर्षण के कारण सज्जन की आक्रामक एवं वासनात्मक तृप्ति का वाह्य रूप से विरोध करने के बावजूद अन्दर से उसके इस रूप को पसन्द भी करती है और अन्त में उसी को अपना जीवन साथी स्वीकार कर लेती है।

''नाच्यौ बहुत गोपाल'' की निर्गुनियाँ का सम्पूर्ण चरित्र चेतन–अचेतन के द्वन्द्व के मध्य विकसित हुआ है। वृद्ध पुरुष विवाहिता होकर, अतृप्त काम–वासना की प्रतिक्रिया स्वरूप वह

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ब्राह्मणी होते हुए भी युवा मेहतर के साथ भाग जाती है, किन्तु उसका अचेतन मन मेहतर संस्कारों को स्वीकार नहीं कर पाता। एक स्थल पर वह सोचती है– ''जो हुआ सो हुआ.. अब इस मेहतर जन से छुटकारा लूँ, भले वेश्या बन जाऊँ।..।''[6] किन्तु उसका संस्कारी मन ऐसा न कर सका और वह अपने पति के डाकू बन जाने के बाद भी उसी की जाति में उसके प्रति जीवन–पर्यन्त एकनिष्ठ होकर रही।

''एकदा नैमिषारण्ये'' की रज्जा का विवाह सोमहुति से निश्चित हो चुका है, किन्तु हुआ नहीं है। इज्या के हृदय में अपने भावी पति के प्रति कोमल भावनाएँ जन्म ले लेती है, पर उसका अचेतन मन इन भावनाओं से संकुचित हो उठता है– ''इज्या सोमाहुति के तकिये पर धीरे–धीरे हाथ फेर रही है और सकुचा कर उसकी उंगलियाँ बीच–बीच में थम भी जाती हैं। आनन्द की बढ़ती डोर के सहारे मन–पतंग मुक्त आकाश में उड़ती तो है, पर लाज भय की चुटकी उसे बाम कर नीचे उतार लेती है। दृ उसे याद भी उन्हीं की आ रही है, जिनके कारण यह सारा उहा–पोह है। हाय राम क्या करूँ क्या न करूँ''[7]

''अमृत और विषय'' की बाल–विधवा रानी का हृदय रमेश के प्रति आकर्षित हो उठता है। रमेश के अन्दर उसने अपना इच्छित नायक देख लिया था। उसके सामने अपने भविष्य की कल्पना करीब–करीब साकार हो उठी थी। उसकी बड़ी तबियत होती थी कि किसी तरह घंटे भर का एकान्त मिले और वह रमेश से बात कर ले, किन्तु संस्कारों के कारण उसका चेतन मन उसे उस प्रेमाकर्षण से हटाता था।''[8] बाद में चेतन–अचेतन के संघर्ष से उबर कर वह रमेश के साथ अन्तर्जातीय प्रेम–विवाह कर सुखद दाम्पत्य जीवन का निर्वाह करती है।

''सुहाग के नूपुर'' की माधवी के चेतन व अचेतन मन की

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अत्यन्त मर्मस्पर्शी झांकी नागर जी ने दिखाई है। कोवलन प्रेम करने के पश्चात् भी जब माधवी को कुलवधू का स्थान और सुहाग के नूपुर नहीं मिल पाते तो उसका चेतन मन आक्रोशपूर्ण हो उठता है। वह कोवलन को धक्के मार कर उसी की हवेली से निकाल देती है और कोवलन के सामने ही अपने नये प्रेमी के साथ चली जाती है। उसके हृदय में कोवलन के प्रति प्रेम फिर भी शेष था। वह अपनी दासी नागरत्ना से कहती है– "किसी को भेज कर हवेली से उनका समाचार मँगवा।"[9] माधवी का यह कथन इस तथ्य पर प्रकाश डालता है कि अपनी व अपनी बेटी की सुरक्षा हेतु माधवी का वाह्य रूप कितना ही कठोर क्यों न हो जाए, किन्तु उसका अन्तर्मन सम्पूर्ण निष्ठा के साथ केवल कोवलन का ही है। राजपुरुष द्वारा सतीत्व लूटे जाने पर वह पहली बार अपने को वेश्या अनुभव करती है।"[10] एक क्षण के लिए वह मरने का निश्चय कर लेती है, पर दूसरे ही क्षण उसका अचेतन मन जीवित रहने का निश्चय कर लेता है– "नहीं, वह मर कर क्या करेगी? अभी उसकी जवानी हरी–भरी है। अभी उसकी लालसाएँ हरी–भरी है। वह जियेगी–मेरे अन्दर की सती मर। मेरी छलना दूर हो। मणि की माता मर। रूपजीवा माधवी जी।"[11]

इस प्रकार माधवी के अन्दर चलने वाला चेतन–अचेतन का द्वन्द्व नागर जी की संवेदनशीलता के अत्यन्त मर्मस्पर्शिता से चित्रित कर डाला है। उसका चेतन–मन सतीत्व की हत्या से क्षुब्ध है, किन्तु अचेतन मन उसे उसके रूपाकर्षण के प्रति सजग कर, पुरुषों को अपने आकर्षण में फंसाने का प्रयत्न करता है।

चितवृतियों का निरोध एवं दमन

फ्रायड के मतानुसार व्यक्ति कुछ मानसिक प्रवृतियों के दमन का प्रयास करता है कयोंकि ये प्रवृतियाँ समाज की दृष्टि में निन्दनीय है। चेतन मन जब अचेतन में उपजी इन प्रवृतियों पर अंकुश लगाता

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है, तो यह स्थिति 'निरोध' या 'दमन' कहलाती हैं।

नागर जी के उपन्यासों में अनेक स्थलों पर चित वृतियों के 'दमन' या 'निरोध' के उदाहरण देखने को मिलते हैं। 'बूँद और समुद्र की वनकन्या सज्जन के प्रति प्रेमाकर्षण से युक्त हो उठती है, किन्तु काफी समय तक वह मन के आकर्षण भाव का दमन ही करती रहती है– ''कन्या ने महसूस किया कि वह जीवन में पहली बार किसी पुरुष के आकर्षण–पाश में पूरी तौर पर बँध गई है।... कन्या को सज्जन के प्रति अपने मन का बंधन मानने में झिझक भी होती रही। इसीलिए वह सज्जन को बार–बार बढ़ावा देने और बार–बार रोक देने के लिए अपने आपसे विवश थी।''[12]

'नाच्यौ बहुत गोपाल' की निर्गुणिया की पति के डाकू बन जाने के पश्चात् पुराने प्रेमी को देखकर काम–पिपासा जाग्रत हो उठती है।'' वह सोचती है कि अगर बसंत लाल अपनी तरफ से पहल करेगा तो वह इन्कार नहीं करेगी। निर्गुनियाँ मोहना से गर्भवती भी है। अनायास ही उसके मन का तेज जाग उठता है और वह अपने मन की इच्छा का दमन करती है– ''इस शरीर का सुख केवल 'एक' के लिए है। वह 'एक' जिसका बच्चा मेरे गर्भ में पल रहा है।''[13] इस प्रकार निर्गुणियाँ जो शरीर–सुख को ही प्रमुख मानती थी, जिसकी लालसा में ब्राह्मणी से मेहतरानी बन गई थी, अपनी इस प्रवृति पर अंकुश लगा लेती है और पुराने प्रेमी को धोखा देकर, कुशलता पूर्वक अपने सतीत्व को सुरक्षित रख लौट आती है।

'अमृत और विष' की गैहां बानूं रमेश के प्रति आसक्त हो उठती है। रमेश की पत्नी रानी की अनुपस्थिति में 'एक रात वह रमेश के पास जाने की तैयारी करती है, किन्तु उसे स्वयं ही अपना यह कदम अनुचित प्रतीत होता है। विवेक जाग्रत हो उठने पर वह बिना मिले ही लौट आती है। नागर जी ने बानो की इस स्थिति का अत्यन्त

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सजीव चित्रांकन किया है– ''कहाँ जा रही है बानो, ये तू क्या कर रही है। मान ले कि तेरा सोचा हुआ न हो और तू खुद ही फँस जाय। वह वहीं की वहीं ठिठक कर रह गई, उल्टे पाँवों लौट आई। अपने कमरे में आई और पलंग पर जा कर धम्म से गिर पड़ी– ''या खुदा, मुझे राह दिखला, या रसूल मेरी बिगड़ी बना। मेरे गुनाहों को माफ कर।''[14] बानों के मन की कोई अदृश्य शक्ति उसे वासना के गर्त में जाने से रोक लेती है। यही स्थिति चित–वृतियों का निरोध या दमन कहलाती है।

लिबिडा (काम–मूलक–ग्रन्थि)

मनुष्य के मन तथा व्यक्तित्व को परिचालित करने वाली मूल शक्ति को फ्रायड ने 'लिबिडो' कहा है। इसे काम–मूलक ग्रन्थि का पर्याय माना जाता है। ''बचपन से ही यह प्रवृति बच्चे के मन में हुआ करती है। यही कारण है कि बच्चों का आकर्षण अधिकांशतः विपरीत लिंग की ओर होता है, किन्तु बड़े होने पर इस बात का ज्ञान होने लगता है कि यह भावना समाज द्वारा निन्दनीय है, अतः अचेतन द्वारा अज्ञात रूप से इस वृति का दमन हो जाता है, जिसके परिणाम स्वरूप यह ग्रन्थि उत्पन्न होती है। भविष्य में ये ग्रन्थियाँ उनके समूचे जीवन–कार्य व्यापार को प्रभावित करती है।''[15]

नागर जी के उपन्यासों की नारियों का चरित्र 'लिबिडो' अर्थात् 'काम–मूलक–ग्रन्थि द्वारा परिचालित दिखाई देता है 'बूँद और समुद्र' की मोहिनी को ''बचपन से मानसिक रति की आदत है। आँखे मूँद कर मन चाहे पुरुष के साथ रमण किया करती है।''[16] विवाहोपरान्त भी तथा मातृत्व पद प्राप्त करने के पश्चात् भी वह पर–पुरुष के साथ कामेष्णा तृप्ति का प्रयास करती है।

''अमृत और विष' की वरुणा इसी ग्रन्थि के प्रबल हो उठने के कारण अविवाहितावस्था में ही मुस्लिम युवक को देहार्पण कर देती हैं

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और गर्भवती हो जाती है।'' [17] इसी उपन्यास की गोपी किशोरी के साथ इस ग्रन्थि के प्रबल हो जाने पर किसी की उपस्थिति की चिन्ता नहीं करती और सहदेई आदि के सामने ही खुले रूप से किशोरी के साथ अश्लील चेष्टाएँ करती हैं।''[18] ऐसा ही उदाहरण वहीदन के चरित्र के माध्यम से देखने को मिलता है, जो अपनी शारीरिक भूख की तृप्ति के लिए किसी की उपस्थिति की चिन्ता नहीं करती और लाल साहब तथा अन्य नौकरों से अपनी इस भूख को शान्त करती रहती है।''[19]

'शतरंज के मोहरे' की दुलारी अपने पति के अतिरिक्त भी अपने दो देवरों–फतहअली व वारिस अली के साथ–साथ पड़ोसी नईम के साथ जो शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करती है, उसका कारण भी यह 'लिबिडो' ही है। आगे चलकर वह सम्राट् नसीरूद्दीन हैदर के साथ भी अपनी काम–वासना की तृप्ति करती है। इन सभी उदाहरणों से स्पष्ट है कि दुलारी का सम्पूर्ण जीवन देह–भोग की यात्रा तय करने में ही व्यतीत होता है।

'एकदा नैमिषारण्ये' की रंभा के हृदय की कामाग्नि भी अत्यन्त तीव्र है। अपने पति धनक सेठ की उपेक्षा कर चन्द्रगुप्त से संसर्ग की लालसा उसे प्रतिक्षा सताती रहती है और अपनी इस लालसा–पूर्ति के लिए वह अनेकानेक उपाय भी करती है।''[20]

'सात घूँघट वाला मुखड़ा' की बेगम समरू सर्वप्रथम अपने प्रेमी बशीर खाँ को अपना कौमार्य समर्पित कर देती है।[21] उसके बाद पति के होते हुए भी अपने नये प्रेमियों टॉमस व लवसूल के साथ भी अपनी वासनात्मक पिपासा को शान्त करती है। राजनीतिक दृष्टि से अत्यन्त शाक्तिशालिनी बेगम समरू को शरीर की यह भूा कई बार अत्यन्त दयनीय बना डालती है और स्वयं पर उनका कोई वश नहीं रह जाता।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'नाच्यौ बहुत गोपाल' की निर्गुनियां का सम्पूर्ण चरित्र इसी ग्रन्थि से संचालित होता हुआ दिखाई देता है। प्रारम्भ से ही अनेक पुरुषों के संसर्ग के कारण पुरुष उसकी कमजोरी बन चुका था। वृद्ध मसुरियादीन से विवाह हो जाने पर उसकी अतृप्त कामवासना जन्य स्थिति का नागर जी अत्यन्त सजीव चित्र उपस्थित करते हैं.... इस सुरीले खिंचाव ने निर्गुन को और भी अधिक दीवना बना दिया, मानों कलेजा चीरती हो, वैसे ही कुरती के बटन खींच कर उसने अपनी छाती खोल दी।.. बावली बनर्गुन ने मचल कर अपना शरीर उघाड़ डाला।''[22] इसी ग्रन्थि के और अधिक प्रबल हो उठने पर ब्राह्मणी निर्गुनियां युवा मेहतर मोहना के समक्ष निर्वसना होकर आ जाती है और फिर उसी के साथ भाग जाती है।

'करवट' की अंग्रेज नारी–पात्र श्रीमती नैन्सी के अन्दर भी 'लिबिडो' की प्रधानता परिलक्षित होती है। पति के होते हुए भी अपने प्रेमी पार्किन्सन के साथ वासनात्मक तृप्ति करती हैं और पति व प्रेमी की हत्या के पश्चात् तनकुन को भी अपना शिकार बनाने का प्रयास करती है।

'सुहाग के नूरपुर' की माधवी कोवलन के साथ शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करती है और अविवाहित होते हुए भी उसकी संतान की माता बनती है।

मन के तीन स्तर

(क) प्रकृत–स्वत्व, (ख) स्वत्व, (ग) उपरिस्वत्व।

'प्रकृत–स्वत्व' मानव मन की प्रारम्भिक नैसर्गिक उमंगों–इच्छाओं और प्रकृत प्रेरणाओं का केन्द्र अचेतन का स्तर होता है।

यह सैद्धान्तिक तर्को से सर्वथा मुक्त और सहज भाव से सभी प्रकार की वासनाओं तथा आचारण प्रवृतियों को ग्रहण करता है।[23]

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इसी का विकसित रूप स्वत्य है, जो वाह्य जीवन के अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है। यही वह स्तर है, जो मन के प्रकृत स्वत्व के अनियन्त्रित आग्रहों को परिस्थिति के अनुसार नियन्त्रित करके लक्ष्य की ओर उन्मुख करता है। 'प्रकृत–स्वत्व' यदि वासना प्रेरित है, तो 'स्वत्व' अनुभव प्रेरित।''[24] उपरिस्वत्व' को दूसरे शब्दों में नैतिक स्वत्व भी कहा जा सकता है, क्योंकि यही वह शाक्त है, जो व्यक्ति का समाजीकरण करती है। इस स्तर का मुख्य कार्य नैतिक एवं अनैतिक प्रवृतियों का अन्तर निर्धारित कर मन को निरन्तर आदर्शोन्मुख कराना है।''[25]

उपन्यासकार अमृतलाल नागर के नारी–पात्रों में उपर्युक्त तीनों स्तर कम या अधिक मात्रा में अवश्य मिलते हैं। प्रथम स्तर–'प्रकृत–स्वरूप' तो सभी नारी–पात्रों में पाया जाता है क्योंकि कोई भी नारी मानव–हृदय की स्वाभविक अनुभूतियों एवं भावनाओं से रहित नहीं हो सकती। स्वत्व की झलक केवल कुछ ही नारी पात्रों में दृष्टिगत होती है। 'बूँद और समुद्र' की वनकन्या पारिवारिक विसंगतियों के मध्य जी रही है। पिता के कामुक आचरण को स्पष्ट देखती है, किन्तु उसका स्वत्व पिता के आचरण से प्रभावित नहीं होने देता। वह पिता के खिलाफ कानून तक पहुँच जाती है। उसके स्थान पर यदि कोई साधारण युवती होती तो पारिवारिक वातावरण से प्रभावित होकर अनुचित मार्ग पर चल सकती थी।

''अमृत और विष' की सती साध्वी सुमित्रा के पति परस्त्रीगामी हो जाते हैं, किन्तु सुमित्रा का आचरण सदैव मर्यादित ही रहता है। सुमित्रा, पूर्ण निष्ठा के साथ सिलाई आदि करके अपने परिवार का लालन–पालन करती है। वह युवा है, पथभ्रष्ट भी हो सकती थी, किन्तु उसका 'स्वत्व' उसे नैतिक मूल्यों के प्रति आस्थावान बनाये रखता है।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'सुहाग के नूपुर' की कन्नगी की भी बिल्कुल यही स्थिति है। उसका पति कोवलन नगरवधू माधवी के प्रेम–पाशा में आबद्ध होकर उसकी उपेक्षा करता है, शारीरिक और मानसिक रूप से उसे प्रताड़ित करता है, किन्तु कन्नगी पति को परमेश्वर मानते हुए सदैव अपने सतीत्व पर दृढ़ रहती है। उसकी इस दृढ़ता का प्रमुख कारण 'स्वत्व' ही है।

'एकदा नैमिषारण्ये' की इज्या का विवाह सोमाहुति से निश्चित हो चुका है। विवाह से पूर्व ही वह उनके घर में रहती है, किन्तु अपनी रागात्मक वासना पर नियन्त्रण रख पूर्ण सात्विकता का परिचय देती हैं। सोमाहुति की इच्छानुसार विवाह हो जाने पर भी वह किसी प्रकार का वासनात्मक सम्बन्ध उनसे नहीं रखती, क्योंकि ऐसा होने से पति के लक्ष्य में व्यवधान आ सकता है। विवाहोपरान्त इज्या की यह दृढ़ता निःसंदेह उसके 'स्वत्व' पर ही अवलम्बित है।

'खंजन–नयन' की कंतों सूर के प्रति प्रारम्भ में वासनात्मक अनुराग रखती थी, किन्तु बाद में इस अनुराग को ईश्वरोन्मुख करने वाला जानकर अपने मन को परिवर्तित कर लेती है। पूर्ण सरल भाव से 'वह सूर के साथ बिना किसी लाला के समर्मित है। उसका निष्काम सेवा भाव अद्‌भुत है और इसी 'स्वतव' का परिणाम है।

'नाच्यौ बहुत गोपाल' की निर्गुणियां पति के डाकू बन जाने के पश्चात् प्रतिकूल परिस्थितियों का शिकार होकर पथ भ्रष्ट भी हो सकती थी। वह अपनी संतान क़े प्रति अपना दायित्व समझती है और हर प्रकार से उन्हें ऊँचा उठाने का प्रयास करती है। पति की अनुपस्थिति में पुराने प्रेमी द्वारा किए गए वासनात्मक अनुरोध को उसकी युवावस्था स्वीकार भी कर सकती थी, पर वह अपने सतीत्व को सुरक्षित रखती है। उसका मन कभी–कभी पूर्व प्रेमी के लिए विचलित अवश्य हो उठता था, पर अपनी मन की शक्ति से वह मानसिक दुर्बलता पर विजय प्राप्त कर लेती थी।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'उपरिस्वतव' के उदाहरण नागर जी के नारी–पात्रों में कम ही मिलते हैं। फिर भी 'शतरंज के मोहरे' की दुलारी व बादशाह बेगम, 'सात घूँघट वाला मुखड़ा' की बेगत समरू, 'एकदा नैमिषारण्ये' की सरयू वाशिष्ठी आदि ऐसी नारियाँ हैं, जिनका 'उपरिस्वत्व' पुरुषों के ऊपर प्रभुत्व बनाये रखने में समर्थ होता है। इन नारियों का व्यक्तिगत जीवन भले ही संघर्षों से परिपूर्ण रहा है। इनका हृदय चाहे कितना ही व्यथित 'क्यों न रहा हो, किन्तु वाह्य रूप से ये नारियाँ अत्यन्त शाक्तिशाली, साहसी व प्रभावशाली रही है।

उदात्तीकरण

कभी–कभी ऐसा होता है कि मनुष्य अपनी तामसिक वृत्तियों पर विजय प्राप्त कर सात्विक तृप्ति अपना लेता है। मनुष्य द्वारा किया गया यह परिवर्तन ही उदात्तीकरण कहलाता है। कभी दमित वासनाओं की अभिव्यक्ति श्रेष्ठ कलाओं के रूप में होती है, तो कभी मनुष्य अपने 'काम' का उन्नयन कर भक्ति की ओर उन्मुख हो उठता है।

नागर जी के कतिपय नारी–पात्रों में यह 'उदात्तीकरण' सहज ही देखने को मिल जाता है। 'मानस का हंस' की रत्नावली अपने पति तुलसी की अपने प्रति चरम आसक्ति देखकर उसके मर्म पर ठेस पहुँचाती है, फलस्वरूप तुलसी की काम–वासना का उन्नयन हो जाता है। वे रामोन्मुख हो उठते हैं, इसके विपरीत रत्ना का स्वयं का जीवन त्याग व साधना से परिपूर्ण हो जाता है। तभी तो गांव की स्त्रियाँ रत्नावली को तुलसी का जीवन सुधारने का श्रेय देती है।''[26]

'खंजन नयन' की कंतों भी सूर के प्रति अपनी वासना का परित्याग कर उनकी निष्काम भक्ति करने लगती है। यहाँ तक कि किन्हीं क्षणों में सूर का मन निर्बल हो उठता है, किन्तु कंतों उन्हें भगवान का स्मरण करा उनकी चेतना को वापस लौटा देती है। अपने इस उदात्तीकृत रूप के कारण वह सूर की दृष्टि में गंगाजल

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सी निर्मल हो जाती है।''[27] सूर को बचाने के प्रयास में कंतों अपने प्राणों का भी परित्याग कर देती है। इस प्रकार कंतों के औदात्य समन्वित संयमित प्रेम उसे श्रद्धा की पात्र बना देता है।

'सात घूँघट वाला मुखड़ा' की बेगम समरू भी जीवन भर पुरुषों से खेलने के बाद केवल 'जीसस क्राइस्ट' के प्रति समर्पित होना चाहती है।

इसी प्रकार स्पष्ट है कि नागर जी ने अपने पात्रों के चरित्र का विकास परिस्थिति के अनुसार किया है और नारी–मनोविज्ञान का सुन्दर चित्र खींच डाला है।

सम्मोहन

मनोवैज्ञानिकों ने मनोजगत् के विविध व्यापारों के अन्तर्गत 'सम्मोहन' नामक व्यापार पर भी बन दिया है। उनके मतानुसार–'सम्मोहन' क्रिया मनोवैज्ञानिक प्रभाव में सक्रियता और अतिशयता लाने का प्रबल माध्यम है।''[28]

नागर जी के उपन्यासें में 'सम्मोहन' के उदाहरण अधिक तो नहीं मिलते, किन्तु फिर भी कुछ उपन्यासों में इस प्रकार के दर्शन हो जाते हैं।

'बूँद और समुद्र' की शीला अपने प्रेमी महिपाल के प्रति सम्मोहित सी हो उठती है– ''उनकी टकटकी बँधी, सधी आँखों में महिपाल की मूर्ति स्पष्ट थी। भोलापन और दृढ़ता लिए हुए महिपाल का खिलखिलाता हुआ चेहरा जाने किस रीझ भरे 'एक' क्षण की स्मृति सा इन समय उनके सामने आ खड़ा हुआ था। सुधि अपनी पूरी शाक्ति लगाकर मांसल हो उठी थी।''[29] इसी उपन्यास की वनकन्या सज्जन के प्रेम में सम्मोहित सी होकर अपनी चेतना विस्मृत कर देती है– ''एक भाव, एक रूप में तल्लीन होकर वनकन्या एक पढ़ी–लिखी, तेज तर्रार, सबला नारी काव्य में बखानी गई वियोगिनी

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बाला की तरह मति–गति हीन होकर स्तब्ध हो गई।... इस समय वन–कन्या न थी, उसका अंतर, बाहर एकाकार हो रहा था और वह आकार सज्जन का था।'' [30]

'नाच्यौ बहुत गोपाल' की निर्गुनियां अपने पति की अनुपस्थिति में उसकी स्मृति मात्र से अपनी सुध–बुध बिसरा देती थी– ''तब–तब एक सूरत, एक मूरत मुझे अपने में रमा लेती थी, फिर दूसरे पर ध्यान नहीं जाता था।''[31] ऐसी स्थिति में निर्गुनिया ऐसी प्रतीत होती थी जैसे वह कहीं दूर जा चुकी हो।

'सात घूँघट वाला मुखड़ा' में लवसूल के प्रति बेगम समरू की सम्मोहित अवस्था का नागर जी ने अत्यन्त सजीव चित्रांकन कर डाला है– ''पर अब मैं उसे देखे बिना पल भर भी जिन्दा नहीं रह सकती। मैं सही ढंग से सोच भी न पाऊँगी। वहाँ काम में मेरा जी भी न लगेगा।''[32]

'एकदा नैमिषारणये' की इज्या अपने होने वाले पति की स्मृतियों से अभिभूत हो खो सी जाती है– ''इत्या थोड़ी खोई बैठी रही।... मन प्रिय को मानो सपने में बरबस पुकार उठा। अपनी ही लाज सी इज्या होश में आ गई।''[33]

असाधारण चित्त–वृत्तियाँ

(चित्त विकृति, चित्त विक्षिप्ति, तथा असामाजिका चित्तवृति)

कभी–कभी बहुत समय तक व्यक्ति को चेतन व अचेतन मन के संघर्षों से जूझना पड़ता है। यह स्थिति मनुष्य को असामान्य व्यवहार करने हेतु विवश कर देती है। इस चित्त विकृति की स्थिति में व्यक्ति अपनी वाह्य चेतना को सम्हाले रखता है, किन्तु उसका अचेतन मन पूर्णतः निरंकुश हो उठता है।

'चित विक्षिप्ति' के अन्तर्गत मनुष्य का चेतन और अचेतन मन प्रभावित होता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति कुछ भी कर सकता है।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'चित विकृति' से अगली स्थिति 'असामाजिक चित्तवृति' की होती है। इच्छाओं का अपूर्ण रह जाना ही इस स्थिति का प्रमुख कारण है। दमित इच्छाएँ व्यक्ति के मनोमस्तिष्क को कुंठित कर उसे अमानवीय बना डालती हैं और व्यक्ति विध्वंसात्मक कार्यों की ओर उन्मुख होने लगता है। हत्या, बलात्कार आदि कार्य इसी स्थिति में होते हैं। नागर जी के कुछ नारी–पात्र उपर्युक्त स्थिति में गुजरते हुए दिखाई देते हैं।

'सुहाग के नूरपूर' की माधवी कोवलन से किये गये प्रणय–सम्बन्धों में असफल हो कर इतनी अधिक विक्षिप्त सी हो उठती है कि उसका बुरी तरह से पिटवाती है। स्वयं भी उसे धक्का देती है व उसके मुख पर थूक देती है।''[34] माधवी का यह कृत्य उसकी विक्षिप्तावस्था का ही सूचक है।

'बूँद और समुद्र' की ताई अपनी नन्हीं बिटिया की मृत्यु से विक्षिप्त सी हो जाती है। दूसरों पर टोने–टोटके करना, अन्तःकरण की ईर्ष्या के वशीभूत होकर दूसरों को मारने के लिए मारण–मन्त्र तक चलाती है।''[35]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि नागर जी ने विक्षिप्त मानसिकता वाली नारियों का भी सजीव चित्रण किया है।

निष्कर्षतः नागर जी ने अपने उपन्यासों में नारियों का मनोवैज्ञानिक पक्ष भी उद्‌घाटित किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी संवेदनशीलता से नारी चरित्र का कोई भी पक्ष अछूता नहीं रह पाया है।

संदर्भ

1. हिज ड्रीम एण्ड सैक्स थोरीज फ्रायड, पृ. 19
2. बूँद और समुद्र, अमृतलाल नागर, पृ. 168
3. वही, अमृतलाल नागर, पृ. 563
4. अमृतलाल नागर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त, सुदेश बत्रा, पृ. 77

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

5. बूँद और समुद्र, अमृतलाल नागर, पृ. 260–61
6. नाच्यौ बहुत गोपाल, अमृतलाल नागर, पृ. 165
7. एकदा नैमिषारण्ये, अमृतलाल नागर, पृ. 48
8. अमृत और विष, अमृतलाल नागर, वृ. 166
9. सुहाग के नूपुर, अमृतलाल नागर, पृ. 193
10. सुहाग के नूपुर, अमृतलाल नागर, पृ. 199
11. वही, अमृतलाल नागर, पृ. 199
12. बूँद और समुद्र, अमृतलाल नागर, पृ. 266
13. नाच्यौ बहुत गोपाल, अमृतलाल नागर, पृ. 180
14. अमृत और विष, अमृतलाल नागर, वृ. 480
15. उपन्यासकार चतुरसेन के नारी–पात्र, डॉ. सूतदेव हंस, पृ. 309
16. बूँद और समुद्र, अमृतलाल नागर, पृ. 64–65
17. अमृत और विष, अमृतलाल नागर, वृ. 607
18. वही, अमृतलाल नागर, पृ. 511
19. वही, अमृतलाल नागर, पृ. 279–80
20. एकदा नैमिषारण्ये, अमृतलाल नागर, पृ. 131–32
21. सात घूँघट वाला मुखड़ा, अमृतलाल नागर, पृ. 12
22. नाच्यौ बहुत गोपाल, अमृतलाल नागर, पृ. 60
23. ब्राउन, साइकोडाइनेमिक्स आफ अनार्मल बिहेवियर, पृ. 163
24. वही, अमृतलाल नागर, पृ. 88
25. वही, अमृतलाल नागर, पृ. 163
26. मानस का हंस, अमृतलाल नागर, पृ.15
27. खंजन नयन, अमृतलाल नागर, पृ. 111
28. उपन्यासकार चतुरसेन के नारी–पात्र, डॉ. सूतदेव हंस, पृ. 309
29. बूँद और समुद्र, अमृतलाल नागर, पृ. 485
30. वही, अमृतलाल नागर, पृ. 262
31. नाच्यौ बहुत गोपाल, अमृतलाल नागर, पृ. 328
32. सात घूँघट वाला मुखड़ा, अमृतलाल नागर, पृ. 99
33. एकदा नैमिषारण्ये, अमृतलाल नागर, पृ. 102
34. सुहाग के नूपुर, अमृतलाल नागर, पृ. 177
35. बूँद और समुद्र, अमृतलाल नागर, पृ. 13

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

छंद–छंद पर कुंकम ''दोहा''

डॉ. भूपेन्द्र हरदेनियाँ

दोहा हिन्दी कविता का मोर–मुकुट है, जैसे श्लोक कहने से संस्कृत की कविता का संकेत मिलता है और गाथा कहने से प्राकृत का, वैसे ही दूहा कहते ही अपभ्रंश की कविता सामने आ खड़ी होती है, अप्रभ्रंश का दूहा हिन्दी में दोहा नाम से जाना गया है।

संस्कृत में कहीं भी दोहा छंद नहीं मिलता, संस्कृत के सभी छंद वर्णों पर आधारित है, जबकि हिन्दी के छंद मात्राओं पर। दोहा मात्रिक छंद है, अतः हिन्दी का अपना छंद है, हाँ संस्कृत के वर्णवृत्तों के नाम पर हिन्दी में बाद में कवित्त और सवैया छंद भी लिखे गये हैं, जो संस्कृत में नहीं हैं।

अपभ्रंश के उत्थान के पूर्व न तो कोई कवित्त को जानता था, न सवैया को, न कोई दोहों को जानता था, जब कोई इनको जानता ही नहीं तो इनका व्यवहार कहाँ से होता?

कवित्त को शायद इसलिए कवित्त कहा गया होगा, क्योंकि

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इसे कविता की तरह गाकर सुनाते होंगे, सवैया का नाम इसलिए सवैया पड़ गया क्यों कि इसे सवाया करके पढ़ा जाता था, अंतिम पंक्ति को पुनः दोहरा दिया जाता है, इसलिए इसे सवैया कह दिया। दोहा को शायद इसलिए दोहा कह दिया गया होगा, क्यों कि यह दो पंक्तियों का छंद माना गया है, जैसे चार पंक्तियों वाले छंद को चौपाई, छः पंक्तियों वाले छंद को छपपय, वैसे ही दो पंक्तियों वाला छंद दोहा कहा गया है। – आचार्य विश्वनाथ मिश्र भी दोहा को दो पंक्तियों वाला छंद मानते हैं। यह तो निश्चित है कि दो यहाँ संख्या का बोधक है, हा कैसे बना या संदिग्ध है। पर इस का संबंध पंक्ति से होना चाहिए, दोहा में हा को प्रत्यय भी मान सकते हैं, तब भी दो + हा (दो पंक्तियों वाला) ही अर्थ होता है।

कुछ विद्वान दोहा शब्द की निरुक्ति प्राकृत की 'गाथा' से मानते हैं, दो+गाथा से दो+गाहा, दो+गाहा से दो+आहा और दोहा बन गया। छंदशास्त्र में पंक्ति को 'पद्' कहते हैं अतः दोहा का अर्थ हुआ दो + पद वाला। छनद, किन्तु 'पद' से 'हा' कैसे बन सकता है? तो दो पथ की कल्पना की जाए–

''छनदसा द्विपथेन स्याद द्विपथ स्वरमकितकः
प्राकृते दोह संशौऽसौ यस्य भेदा नवत्वि में।।''

–संगीत रत्नाकर, प्रबंधाध्याय।

दोहे की दो पंक्तियों में चार चरण होते हैं, प्रथम और तृतीय चरण में तेरह तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण में ग्यारह मात्राएँ होती हैं, इसके चारों चरणों में कुल मिलाकर 48 मात्राएँ होती है। अन्त में लघु (1) होता है।

''एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास
एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास।।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उपरोक्त शर्तें पूर्ण होने पर भी यदि वर्णक्रम न हो तो दोहा का प्रभाव भंग होता है। अतः दोहाकार को दोहे की रचना करते समय सजग और सचेष्ट रहना पड़ता है। यदि वार्णों की गणना की जाये, तो दोहे में कम से कम 24 और अधिक से अधिक 46 वर्ण आ सकते हैं।

दोहे की उपरोक्त कसौटी में कोई शिथिलता वांछनीय नहीं है, यद्यपि आज इसकी 24 मात्राओं के बन्धन को शिथिल करने की बात होने लगी है, इस प्रकार की सुविधाजन्य शिथिलता से दोहों की प्रवाहमय गेयता ही समाप्त हो जायेगी, जो हमारे वेदों को कंठस्थ करने की संजीवनी रही है और उसी गेयता के कारण दोहा प्राचीन भारतीय परंपरा से चलता हुआ, हमारे लोकांचलो के अनपढ़ समाज का कण्ठाहार बनकर आज भी जीवित है।

दोहे की निरूक्ति के सम्बन्ध में कुछ लोगों का कहना है 'दोहा' दोधक से बिगड़कर बना है, पर विचारणीय है कि दोधक वार्णिक छंद है, जिसमें तीन जगण तथा दो गुरू की व्यवस्था होती है और इस प्रकार इस छंद में कुल 16 मात्रायें होती हैं, जबकि दोहा अर्ध्द समचतुष्पदी मात्रिक छंद है, जिसमें कुल 48 मात्रायें होती हैं, अतः दोधक दोहे की निरूक्ति का आधार कथमपि नहीं हो सकता। दोहा के लक्षणों के ज्ञान के लिए गणों को समझना आवश्यक है। एक गण में तीन वर्ण ही हाते हैं। इस प्रकार गण आठ प्रकार के होते है। इन आठ गणों को एक सूत्र में स्मरण रखा जाता है–

सूत्र 'यमाताराजभानसलगा'

"इस सूत्र में दस वर्ण हैं, जिनमें पहले आठ वर्ण गणों के सूचक हैं और अन्तिम दो वर्ण लघु (ल) और गुरू (गा) के। इस सूत्र में गणों को निकालने को तरीका यह है कि जो गण निकालना हो

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

उसके संक्षिप्त रूप के बोधक वर्ण से आरम्भ कर आगे के दो वर्णों को ले लेना चाहिए। इस प्रकार तीन–तीन वर्णों के आठों गण अनायास निकल आयेंगे। उदाहरणार्थ, मगण किसे कहते हैं, यह जानना है तो मा से आरम्भ करके उसके आगे के दो वर्ण ले लीजिए–तो रूप होगा मातारा। ये तीनों गुरू वर्ण हैं, अतः मगण का रूप हुआ त्रिगुरू (SSS)। ऐसे ही नगण जानना है तो न से आगे दो वर्ण ले लें– रूप हुआ न स ल। ये तीनों लघु वर्ण हैं, अतः नगण हुआ त्रिलघु (।।।)। इस प्रकार इस सूत्र से गणों को याद रखने में बहुत सौकर्य हो जाता है'' काव्य तत्व–आ. देवेन्द्रनाथ शर्मा

आठ गणों को हम इस प्रकार देख सकते हैं–

सूत्र	गणों के नाम	चिन्ह	संख्या	उदाहरण
य	यगण	।SS	एक लघु, दो गुरू	कमालो
मा	मगण	SSS	त्रिगुरू	कामाला
ता	तगण	SS।	दो गुरू, एक लघु	कामाल
रा	रगण	S।S	एक गुरू, एक लघु, एक गुरू	कामला
ज	जगण	।S।	एक लघु, एक गुरू, एक लघु	कमाल
भा	भगण	S।।	एक गुरू, एक लघु, एक लघु	कामल
न	नगण	।।।	त्रिलघु	कमल
स	सगण	।।S	दो लघु, एक गुरू	कमला
ल–लघु		।	एक लघु	
गा–गुरू		S	एक लघु	

मात्रिक छंदों में मात्राओं की संख्या निश्चित रहती है। वर्णिक छंद वर्ण की संख्या पर आश्रित रहते हैं। छन्द की प्रत्येक पंक्ति के अलग–अलग वर्ण गिने जाते हैं।

देखने में दोहा एक नन्हा–सा, मुन्ना–सा छंद है, लेकिन

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इसका अनुशासन बहुत बड़ा है, कवि को कम शब्दों में बहुत अधिक कहना होता है, दो पंक्तियों में भाव की सारी सामग्री या इस मसूचे चक्र को स्थापित करना होता है–एक दोहाकार के सामने बड़ा ही सीमित मैदान होता है– जैसे सौ मी0 के मैदान में ही उसे हजार, दस हजार मीटर की दौड़ लगानी हो, और दौड़ लगाते समय उसे मैदान के गढढों से भी बचना पड़ता है। छन्दशास्त्र में दोहे के विषम चरणों के आदि में जगण वर्जित है, ऐसा होने पर दोहे को चंडालिनी कहा गया है और इससे लय में अवरोध भी होता है, एक साथ दो जगण का प्रयोग तो और भी दूषित है।

जगण का दोष वहाँ कम हो जाता है जहाँ दो शब्द हैं, पहले शब्द में एक या दो वर्ण और दूसरे शब्द के दो या एक वर्ण मिलकर जगण बनाते हैं। जैसे–

''भले भलाई पै लहाहि, लहहिं निचाई नीची''

यहाँ प्रथम चरण के दो शब्दों के वर्ण मिलकर जगण बनाते हैं। अतः उक्त दोहे में चण्डालिका दोष नहीं माना जाएगा। दोहे की पहचान के साथ यह भी आवश्यक है कि हम दोहे के भेदों को भी जानें। छनदोमंजरी के प्रणेता श्री गजाधर कवि ने एक ही छन्द में दोहा के प्रसिद्ध तेईस भेदों का वर्णन किया है–

1–भ्रमर 2– सुभ्रामर, 3–शरभ, 4–श्येन, 5–मंडूक बखानहु, 6–कर्मट, 7– करभ सु और

8– नरहि 9–हंसहि परिमानहु गनहु 10–गयंद सु और 11–श्रयोधर 12–बल.अवरेखहु

13–वान, 14–त्रिकल प्रतच्छ, 15–कच्छपहु, 16–मच्छ विसेखहु, 17–शार्दूल, 18– अहिबरहु

19–व्यालस्तु व 20–विडाल अरू, 21–अश्वगनि उददाम, 22–उदर

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

अरू, 23–सर्प शुभ तेइस विधि दोहा करनि।

दोहा में सबसे अधिक गुरू मात्राएँ बाइस रह सकती हैं। शेष चार लघु मिलाकर मात्राओं की संख्या 48 हो जाती है। ऐसा 22 गुरू मात्रा वाला भेद भ्रमर, 21 गुरू और 6 लघु वाला भेद भ्रमर, 20 गुरू और 8 लघु अक्षर वाला भेद शरभ, 19 गुरू और 10 लघु वाला श्योन, 18 गुरू और 12 लघु वाला मंडूक, 17 गुरू और 14 लघु वाला मर्कट, 16 गुरू और 16 लघु वाला करभ, 15 गुरू 18 लघु वाला नर, 14 गुरू और 20 लघु वाला हंस, 13 गुरू और 22 लघु वाला गयन्द, 12 गुरू और 24 लघु वाला पयोधर, 11 गुरू और 26 लघु बल, 10 गुरू और 28 लघु वाला वानर, 9 गुरू और 30 लघु वाला त्रिकल, 8 गुरू और 32 लघु वाला कच्छप, 7 गुरू और 34 लघु वाला मच्छ, 6 गुरू और 36 लघु वाला शाईल दोहा होता है। इसी प्रकार ब्याल (4 गुरू और 40 लघु), अहिवर (5 गुरू और 38 लघु), बिडाल (3 गुरू 12 लघु), श्वान (2 गुरू 44 लघु), उदर (1 गुरू और 46 लघु), सर्प (48 अक्षर सभी लघु) दोहे होते हैं।

वस्तुतः दोहा के यह 23 भेद ही प्रमुख हैं। गुरू और लघु के कम या बढ़ के आधार पर इसके सैकड़ों भेद होते हैं। हिन्दी काव्य में दोहा का प्रवेश, प्रसार और महत्व–दोहा की एक लम्बी और संघर्ष भरी पद यात्रा है। दोहा 6वीं शताब्दी से प्राकृत और अपभ्रंश से झरने जैसा झरता हुआ आगे बढ़ता गया। जोइन्दु (6वीं शताब्दी) के 'परमात्म प्रकाश' और रामसिंह के पाहुड़ दोहा (11वीं श.) से यह दोहा की परम्परा भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल में भी यथावत प्रवाहमय है। दोहा की व्युत्पत्ति कैसे भी हुई हो, किन्तु यह तय है कि दोहा अपभ्रंश काल की ही देन है, अपभ्रंश भाषा का समय 600 वि. सं. 1200 वि. सं. तक माना जाता है, अभी तक अतुकांत छंद

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

होते थे, किन्तु अपभ्रंश काल में पहली बार छंदों के चरणों के अंत में तुक लगाने की शैली प्रारंभ हुई, जिससे छंद को संगीतबद्ध कर गेय बनाने में विशेष सुविधा मिली तथा दूहा और दोहा का उद्भव हुआ एवम् इस काल में सर्वाधिक प्रयोग भी दूहा का ही हुआ, दूहा का प्रयोग प्रचार के कारण अपभ्रंश का दूसरा नाम दूहाबंध पड़ गया, प्रबंध चिन्तामणी में दूहाबंध या दूहाविधा को लेकर विवाह करने वाले दो चारणों की कथा आती है, जो यह सूचित करती है कि अपभ्रंश काव्य को दूहा विद्या भी कहने लगे थे, कुछ लोगों का मानना है कि दूहा छंद अपभ्रंश काल में एकाएक प्रकट नहीं हुआ, यह पहले से ही लोकभाषा में प्रचलित था, दोहा मूलतः लोकछंद है।– 'फोक वर्स' है, यदि हिन्दी का कोई जातीय छंद है, तो वह दोहा है।

भाषा वैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार समाज में दो भाषाओं के रूप प्रचलित होते हैं, एक लिखित भाषा जिसमें साहित्य की रचना होती है, देसरी सामान्यजनों की बोलचाल की, जिसे लोकभाषा कहते हैं। लोकभाषा शनैः–शनैः साहित्यिक भाषा का रूप ग्रहण करती है।

भाषा की इसी प्रक्रिया के अनुसार दोहा लोककंठ से निकलकर अपभ्रंश के साहित्य में आया, दोहा की प्रवृत्ति का निम्न छंद अपभ्रंश–काल के पूर्व भी कालिदास के विक्रमोंर्वशीयम् में मिलता है।

''भई जाणिंउ मियलोयणिं, णिसियस कोई कटेइ।
जायण णव ताड़िसामालौ, धाराहरू वरिसेइ।।''
विक्रमोंवंशीयम् (चतुर्थ अंक)

वहरहाल दूहा छंद अपने अभिर्भाव के कितने ही दिनों बाद तक चारणों द्वारा सुनाया जाता रहा। 'ढोला मारू दा दूहा' इसी परम्परा का प्रतीक है, सौराष्ट्र में एक विशेष प्रकार के दोहों को गाने

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की परंपरा थी, जिसका परिवर्ती नामकरण सोरण है, गुजरात में यह कहावत प्रसिद्ध है।

''सोरठियों दूहोभलो, भली मरवण की बात।

जोवन छाई धण भली, तारा छाई रात।।''

अपभ्रंश काल में दोहा जैन कवियों का प्रसिद्ध छंद रहा है, 'हेमचन्द्र' कृत्य 'हेमचन्द्रानुशासन' मुनि रामसिंह कृत्य 'पाहुण दोहा' तथा देवसेन कृत 'सावधम्मदूहा' इस काल के जैन कवियों की प्रसिद्ध कृतियाँ हैं, जिनमें विशेष रूप से दोहों की रचना हुई है। बौद्ध सिद्धों के काव्य में भी दोहों की रचना प्रमुख रूप से हुई है। सिद्ध सरहपा और कण्डपा कृत 'दोहा–कोष' इस काल के सिद्धों के दोहाग्रंथ हैं।

हिन्दी के आदि काल में डिंगल और पिंगल दोनों प्रकार के काव्यों में दोहों की रचना मिलती हैं, अपभ्रंश से आये इस छंद को राजकवियों ने अपनाया, जिससे इसे रासों ग्रन्थों में स्थान मिला। रासो साहित्य में प्रयोग हुए दोहों की विशेषता यह है कि इनके चरणान्त में सदैव लघु होता है।–

''ग्रह सरपंच चप हंस, हथ, लगन सु अष्टम मंद।

दुनिया गुरू मेषह तरनि, चित्रह जनम नरिंद।।

रासोकार के दोहों को जब पढ़ते हैं तो लगता है कि कोई नोंसिखिया साईक्लिस्ट है, जिसे साइकल पर चढ़ने का शौक तो अधिक है परंतु उसके दोहों के दोनों पहिये वैलेंस ठीक–ठाक न रहने के कारण डगमगातें, आवश्यकता से अधिक हिलते डुलते हुए नजर आते हैं।

दोहे के विकास की दृष्टि से हिन्दी का भक्तिकाल महत्वपूर्ण समय है, उसमें सूर्य की प्रभा ही नहीं चाँद की सुधा भी है, उसके प्रभात में जितना सोना है, रात में उससे अधिक चाँदी है, साखियों के

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सम्राट, लहरतारा के स्वर्णकमल, फूलों की देह वाले कबीर साहब ने अपना काव्य दोहों में लिखा, कबीर की साखियों और निर्गुणमार्गीय संतों के दोहों को सलोक या श्लोक भी कहा जाता है। सिक्ख गुरूओं ने भी दोहों की रचना की है।

सूफियों का प्रिय छंद भी दोहा ही है। जायसी का ''पद्मावत'' दोहा चौपाई में (1540 ई) में लिखा गया है। तुलसीदास का रामचरित मानस तो दोहा–चौपाई का अमृत कलश ही है। तुलसीदास जी के दोहे ईश्वरीय अनुराग की ज्योत्सना से स्नात वह ताजमहल है जिसमें सीताराम की पुण्यस्मृति चिरंतर है। दोहा तुलसी का प्रिय छंद रहा है उन्होनें दोहे के विषय में लिखा है–

''सनिमय दोहा दीप जहाँ, घर–घर करे प्रकाश''

गोस्वामी जी ने अपने काव्य में तो दाहा का प्रयोग किया है, अलग से दोहावली नामक प्रसिद्ध रचना भी की है। दोहों को तुलसीदास जी ने इतना ऊँचा उठा दिया है, ऐसा चमका दिया, उसमें ग्रगाढ़ भक्ति के उद्‌गारों को बहाते–बहाते उसे इतना पवित्र, इतना पावन बना दिया कि दोहा कविता नहीं रहा, मंत्र बन गया।

तुलसीदास के अतिरिक्त प्राणचंद चौहान के 'रामायण महानाटक' में, नरहरि बारहट कृत 'पौरूषेय रामायण', लालदास कृत 'अवध विलास' में दोहा का प्रयोग मिलता है। कृष्ण काव्य परंपरा में परमानंददास के 'परमानंद सागर' में गेय पदों के साथ–साथ दोहा चौपाई शैली का भी प्रयोग मिलता है। ये अष्टछाप के कवियों में प्रमुख स्थान रखते हैं।

राधावल्लभ सम्प्रदाय में हरिराम व्यास ने व्यासवाणी में 148 दोहे और राजमाता में 604 दोहे लिखे है। ध्रुवदास के विशाल साहित्य सृजन में और नागरीदास ने भी दोहा का प्रयोग किया है।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रसखान ने कविता और सवैया के साथ दोहा को अपनाया।

संत तुलसीदास जी की पत्नी रत्नावली ने 'दोहा संग्रह' की रचना की है जिसमें नीति के 111 दोहे हैं। उदाहरण–

''घी को घट है कामिनी, पुरूष तपत संसार।

रत्नावलि घी अगिन को, उचित न संग विचार।।''

(हि. सा. का इति. नगेन्द्र प्र0 259)

1570 ई. में जमाल कवि ने 'जमाल दोहावली' की रचना की है

उदा0 –''रंग ज चोल मजीठ का, संग वचन प्रतिपाल।

पाहण रेख रू करमगत, ए किमि मिटे जमला।।''

(हि. सा. का इति. नगेन्द्र पृ0 250)

बीकानेर के नरेश महाराजा राजसिंह के राजकवि उदैराज ने 1603 ई. में ''उदैराज को दूहा' ब्रजभाषा में लिखे हैं। रहीम के रचे हुए नीति संबंधी तीन सौ दोहे मिलते हैं।

रीतिकाल में दोहे को श्रृंगार की तंत्री पर चढ़ा दिया, भक्तिकाल ने जिसे मंत्र बनाया, रीतिकाल ने उसे तंत्र बना दिया। रीतिकाल ने जिधर भी दोहों की मुट्ठी भरकर भेंकी उधर फूल खिल उठे हैं। कुसुमाऽध बिहारी के तीरों का तो कहना ही क्या है, छोटे–छोटे तीरों ने कितने गंभीर घाव किये हैं, यह दोहों की पराकाष्ठा है।

रीतिकाल का एक–एक दोहा ब्रज के दूध, दही और माखन में नहाया हुआ, श्याम के अनुराग में डूबा है। एक– एक दोहा माधुर्य की मेनका है। समस्त नक्षत्र मंडल उसके चरणों पर न्योछावर हो नखावली बन गया है। जहाँ बिजली अभिसार करती है, भौरें संदेश पहुँचाते हैं, यहाँ फूलों में कांटे नहीं है, फूल ही विरह से सूखकर कांटे

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बन गये हैं जैसे रहीम, तुलसी के दोहे जनप्रिय हैं, उसी रतह बिहारी के दोहे भी जन–जन का कण्ठहार बने हुए हैं। उन्होंने 'सतसई' मुक्तक काव्य दोहे में लिखा। वे रीतिबद्ध कवि थे। वे दोहा के मुकुटमणि हैं।

इसी प्रकार सेनापति, रत्नाकर, पद्‌माकर, सुखदेव मिश्र, रसनिधि, वृंद कवि, रामसहाय, घनानंद, आलम, बोधा, ठाकुर, द्विजादेव आदि कवि इस युग के अन्य दोहाकार हैं। आधुनिक युग के कवियों में दोहे को रीतिकाल के ब्रजभाषा काव्य से निकालकर उसका प्रयोग खड़ी बोली की कविताओं में प्रारंभ किया, इस प्रकार देहा अपने विकास के अनेक सोपानों को पार करते हुए समसामयिक कविता में भी एक प्रगतिशील छंद है, उस समय भी दोहे का महत्व लोगों में बना हुआ हैं, जबकि दोहों का महत्व नगण्य समझा जा रहा है, और लोग छंदहीन, लयहीन, तुकहीन कविता लिखकर ही अपने को कवि घोषित करने में लगे हैं।

आज लोगों ने दोहों का महत्व समझा है भारतेन्दु मण्डल के सुकवि अंबिकादत्त व्यास ने, सुकवि सतसई, में दोहे लिखे। अन्य कवियों जैसे श्रीधर पाठक, हरिऔध, रामचिरत उपाध्याय, वियोगि हरि, किशोरीलाल वाजपेयी, द्वारिका प्रसाद मिश्र आदि ने दोहों में रचनाएँ की।

ख्याति प्राप्त कवि शिवमंगल सिंह सुमन और महान गीतकार नीरज ने भी जीवन के अंतिम दिनों में दोहे लिखे अब केवल हिन्दी में ही नहीं उर्दू, मराठी, गुजराती, मालवी, राजस्थानी, भोजपुरी, हरियाणवी आदि भाषाओं में भी दोहा लिखने की प्रवृत्ति बढ़ रही है, थोड़े से शबदों में गहन–गंभीर भाव व्यक्त करने की कला किसे प्रभावित नहीं करेगी? इक्कीसवी सदी की देहरी पर खड़ा होकर

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दोहा आज अपनी पूर्ण आर्जव के साथ अपनी उपादेयता सिद्ध कर रहा है। दोहा छंद जहाँ अपने आप में संपूर्ण है, सशक्त है, वहीं वह दूसरे छंद कुडलिया, सोरठा आदि छंदों के निर्माण में नींव का काम करता है। इसलिए कहा जा सकता है कि छंद छंद पर कुंकुम है 'दोहा'। दोहा कालजयी है, अजेय है।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अज्ञेय के काव्य में 'असाध्य वीणा' का सन्दर्भ

डॉ. समना शर्मा

असाध्य वीणा अज्ञेय के काव्य संकलन 'आंगन के पार द्वार' में संगृहीत एक लम्बी कविता है, जिसमें एक ऐसी वीणा का वर्णन है, जिसे विभिन्न संगीतकार साध नहीं पाते। अंत में राजा प्रियवंद केशकम्बली को इस कार्य के लिए बुलाता है। प्रियवंद उस किरीटी वृक्ष के चिन्तन में लीन हो जाता है, जिसके काष्ठ से वीणा बनाई गई है। वज्रकीर्ति नामक साधक ने इसका निर्माण किया था। वीणा के पूरे होते ही उसकी जीवन–लीला भी समाप्त हो गई। प्रियवंद वीणा के चिन्तन में इतना लीन हुआ कि स्वयं को भूल गया और अंत में वीणा बज उठती है। सभा में उपस्थित सभी लोगों को उसका स्वर अलग–अलग अनुभव होता है। अंत में प्रियवंद् वीणा को धीरे से गोद से उतारकर, ढक कर चला जाता है और सभा में फिर मौन छा जाता है।

प्रस्तुत कविता में रहस्यवाद की तीनों स्थितियाँ–जिज्ञासा, प्रयत्न एवं संयोग उपस्थित है। ''रहस्यवाद ईश्वर तथा सृष्टि के परम तत्व या सत्य पर आश्रित और सात्विक आत्मानुभूति से सम्बन्ध

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
रखने वाला एक वाद या सिद्धान्त जो आध्यात्मिक तथा साहित्यिक क्षेत्रों में, परमात्मा के प्रति जीवात्मा के अनुराग या प्रेम के द्योतन का सूचक है।''[1]

''वह धार्मिक वृत्ति जिससे मनुष्य प्रत्यक्ष रूप से ईश्वर के साथ सम्बन्ध सीपित करने का प्रयत्न करता है।''[2]

आसाध्य वीणा को बजाने में अनेक संगीतकार असफल रहे। राजा, रानी, सभा में उपस्थित सभी लोग यह सोचते हैं कि यह वीणा अपना मौन कब तोड़ेगी? राजा अपनी इसी जिज्ञासा के कारण प्रियवंद केशकम्बली को बुलाता है और कहता है कि यह वीणा बज्रकीर्ति के द्वारा बनायी गयी है, जैसे ही उसकी वीणा बनाने की साधना पूरी हुई साथ ही उसकी जीवन लीला भी पूरी हो गई। अनेक कलावंत आए, लेकिन कोई इसे साध न सका। सबका अभिमान चूर हो गया और अब यह असाध्य वीणा के नाम से प्रख्यात हो गई है। इसलिए आज आपको बुलाया है। मैं, रानी और सभा में उपस्थित सभी लोग इसको सुनने के लिए उत्सुक हैं। आप आए तो ऐसा लगता है कि यह साध आज पूरी होगी। जिज्ञासा का उद्हारण अवलोकनीय है–

''कृतकृत्य हुआ मैं तात! पधारे आप
भरोसा है अब मुझको
साध आज मेरे जीवन की पूरी होगी
यह मैं, यह रानी, भारी सभा यह
सब उदग्र पर्युत्सुक।''[3]

कविता में प्रयत्न की दशा बताते हुए अज्ञेय जी ने बताया है कि राजा ने वीणा प्रियवंद को सौंप दी। प्रियवंद केशकम्बली ने कहा कि वह कोई कलावन्त नहीं मात्र एक साधक है। केशकम्बली ने वीणा को बढ़े प्रेम से उठाया और अपनी गोद में रख लिया और उस

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विशाल किरीटी तरू को नमस्कार कर मन–ही–मन आँखें बंद कर उस वृक्ष का साक्षात्कार करने का प्रयत्न, करते हुए साधना करने लगा कि मैं तुम्हें सुनना चाहता हूँ। मेरे में इतना साहस नहीं कि मैं तुम्हें स्पर्श कर सकूँ। तुमसे बनी वीणा मेरी गोद में है और मैं अपने आपको भूलकर तुममें लीन हूँ। यदि मुझे शरण देने योग्य समझो तो यह मौन समाप्त करो–

''तू गा
मेरे अंधियारे अन्तस् में आलोक जगा
स्मृति का
श्रुति का–
तू गा, तू गा, तू गा, तू गा, तू गा।''[4]

कवि ने प्रस्तुत कविता में परमात्मा की प्राप्ति के प्रति जिज्ञासा एवं प्रयत्न ही नहीं, बल्कि संयोग का भी वर्णन किया है। परमात्मा जिसे पाना कठिन कार्य है पर असाध्य नहीं है। तीव्रतम जिज्ञासा, अन्तस प्रयत्न से उसकी प्राप्ति संभव है। इसी का वर्णन अज्ञेय ने अपनी इस कविता में किया है। केशकम्बली ने अपने हाथों से वीणा के तारों को छेड़ा तो ऐसा लगा जैसा सोया हुआ शिशु जाग पड़ा हो और ऐसा सुनते ही केशकम्बली के शरीर में बिजली दौड़ गई। वीणा का ऐसा संगीत हुआ जैसे साक्षात् परमात्मा अवतरित हुए हों। इसलिए कवि ने लिखा है–

''सहसा वीणा झनझना उठी
संगीतकार की आँखों में ठंडी पिघली ज्वाला–सी स्लक गयी
रोमांच एक बिजील–सा सबसे तन में दौड़ गया।''[5]

आचार्य विद्यानिवास मिश्र 'असाध्य वीणा' नामक अपने आलेख में लिखते हैं– ''गुफा'गेह में रहने वाला केशकम्बली–प्रियवंद कलावन्त के रूप में नहीं, बल्कि एक शिष्य साधक के रूप में वीणा के

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रति अपने को अर्पित करता है। ठीक–ठीक कहें तो अपनी व्यष्टि को उस समष्टिमयी समाहित वाणी में निःशेष भाव से डुबा देता है और उस समष्टि के प्रत्येक जीवन–स्पर्शी मुखरित क्षण के साथ अपनी व्यष्टि का सीधा और रागात्मक तादात्म्य स्थापित करता है। जब यह प्रक्रिया पूरी हो जाती है, तब वीण बज उठती है। व्यक्ति का अभिमान विराट् के प्रति अर्पित होकर विराट् को गतिशील बना देता है। जब तक व्यक्ति के भीतर विराट् निजता के सम्बन्ध से सीपित नहीं होता, तब तक वह एक अभिमन्त्रित जड़ पदार्थ बना रहता है। उसे गतिशील बनाने के लिए व्यक्ति की आवश्यकता है और व्यक्ति को अपनी निजता प्रमाणित करने के लिए उस विराट् की आवश्यकता है। जब दोनों परस्पर साकांक्ष हो जायें और दोनों के बीच परस्पर पूर्ण रागात्क सम्बन्ध स्थापित हो जायें, तब विराट् व्यक्ति की ओर उन्मुख हो जाता है।"[6]

यहा कथन सत्य है कि जब तक व्यक्ति पूर्ण रूप से उस परम सता के प्रति समर्पित नहीं होगा तब तक वह उसे पा नहीं सकता। विराट् की प्राप्ति के लिए समर्पण आवश्यक है। जब तक व्यक्ति अज्ञानता के तम से घिरा रहता है तब तक विरह का अनुभव करता है। पर जैसे ही यह अन्धकार समाप्त होता है। तब परम सत्ता एवं व्यक्ति के मध्य रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं, विरह अवस्था समाप्त हो संयोग की स्थिति आ जाती है और परम सता से तादात्म्य हो जाता है। 'असाध्य वीणा' में भी परमात्मा से स्थापित इन्हीं रागात्मक सम्बन्धों को उद्घाटित किया गया है।

चन्द्रकांत महादेव बांदिवडेकर 'अज्ञेय की कविता में रहस्यवाद' में लिखते हैं– "अज्ञेय का रहस्यवाद में आकर्षण उनके व्यक्तित्व से पूर्णतः सम्बद्ध है, वह न सुविधाजनक मुखौटा है, न कृत्रिम मुद्रा।"[7] अज्ञेय के रहस्यवाद में कहीं भी कृत्रिमता नहीं है, बल्कि व्यक्तित्व का समर्पण भाव है। मनुष्य जीवन में ही उस परम

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सता को अनुभव कर सकता है। इसके लिए किसी प्रपंच की आवश्यकता नहीं, केवल सात्त्विक भाव चाहिए।

परमात्मा विराट् एवं अखण्ड है पर फिर भी उस अखण्ड परम तत्व का ग्रहण अलग–अलग है। असाध्य वीणा में उस परम सत्ता का अनुभव सभा में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति को अलग–अलग होता है। वीणा बज उठती है और सभा में प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती है। यह उस विराट का प्रभामय संगीत है। राजा को अनुभव हुआ कि युद्ध में विजय प्राप्ति का नाद गूँज रहा है। रानी को अनुभव हुआ कि मूल्यवान आभूषणों की खनक से सभा गूँज उठी है। निर्धन व्यक्ति को लगा कि खाली पात्रों में भोजन बनने की खनखनाहट है। नवविवाहित युवक को यह स्वर सहमे पैरों की पायल ध्वनि–सा अनुभव हुआ। किसी अन्य व्यक्ति को बालक की किलकारी–सा अनुभव हुआ। शोषण करने वाले को यह ध्वनि जाल से बनी तड़पती मछली की वेद्ना–सी अनुभव हुई। किसी को चिड़िया की चहचहाट–सी अनुभूति हुई। सत्य एक होने पर भी प्रत्येक व्यक्ति का उसे देखने का दृष्टिकोण अलग–अलग है–

राजा ने अलग सुना
जय देवी यशः काय
....
रानी ने अलग सुना
छँटती बदली में एक कौंध कह गयी–
तुम्हारे ये मणि–माणिक, कंठहार पखस्त्र
मेखला–किंकिण–
....
उसे
बटुली में बंहुत दिनों के बाद अन्न की सौंधी खुदबुद

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किसी एक को नयी वधु की सहमी–सी पायल ध्वनि।

किसी दूसरे को शिशु की किलकारी।

किसी को जाल फँसी मछली की तड़पन।''[7]

आचार्य विद्यानिवास मिश्र वीणा की ध्वनि का सभा में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति के ग्रहण विषयक लिखते हैं– ''इस समष्टि–संगीत के अवतरण में सब व्यक्ति एक से डूबते हैं, लेकिन जब उसमें से डूबकर फिर तिरते हैं तब फिर एकांकी हो जाते हैं, क्योंकि समष्टि में मिलकर प्रत्येक व्यष्टि एक नव संस्कारयुक्त व्यष्टि बनकर निखर आता है। इसलिए संगीत के साथ एकाकार होते समय सब एक हैं, किन्तु उस संगीत में जो अन्तर्नाद मिलता है, वह सबका अलग–अलग है, राजा–रानी और विभिन्न मनोदशा वाले सदस्यों का अलग–अलग। प्रत्येक व्यक्ति अपनी आकांक्षा की पूर्ति पाता है, सबकी इयत्ता अलग–अलग जागती है और पुनः मुक्त हो जाती है।''[8]

सभा में उपस्थित व्यक्ति, जिनकी जिसमें रुचि है, उसी का अनुभव वीणा के संगीत में करते हैं। वीणा का संगीत सभी ने एक–सा सुना पर उस ध्वनि का आनन्द, उसकी तनमयता का अनुभव सबने अलग–अलग किया।

चन्द्रकांत महादेव बांदिवडेकर के अनुसार, ''अज्ञेय में मनुष्य जीवन और उसके विविध व्यापार के प्रति उपेक्षा भाव नहीं है, वैज्ञानिक विकास के प्रति उदासीनता नहीं, मनुष्य की बौद्धिक एवं भावनात्मक उपलब्धियों के प्रति अस्वीकार नहीं है, विरक्ति की थोथी कल्पनाओं को स्थान नहीं है, प्रकृति को हृदयंगम करने के लिए ईश्वरीय संकेत की आवश्यकता नहीं है, न उस पर परासत्ता के विराट् बिम्ब या प्रतीक का आरोपण आवश्यक है। इस रहस्यवाद की कल्पना में मनुष्य इसी जीवन के स्वस्थ आनंद–लाभ में परासता का अहसास कर सकता है।''[9]

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह तथ्य है कि अज्ञेय की रचनाओं में मनुष्य की बौद्धिक एवं भावनात्मक उपलब्धियों के प्रति अस्वीकार नहीं हैं, बल्कि स्वीकार्य है। 'असाध्य वीणा' में भी वीणा की ध्वनि प्रत्येक व्यक्ति भिन्न–भिन्न भावनात्मकता को उभारती है। सभा में उपस्थित सभी लोग अपने जीवन काल में ही परासत्ता के आनन्द का अनुभव करते हैं।

कवि ने कविता में जीवन–दर्शन का बोध कराया है। व्यक्ति के जीवन का मुख्य लक्ष्य उस परम सत्य के ज्ञान का बोध है। अपने इस जीवन में परम सत्ता की साधना, परम सत्ता की प्राप्ति का प्रयत्न। इस प्रयत्न का वर्णन कवि ने अपनी इस कविता में किया है। अपने इस लक्ष्य से भटक कर व्यक्ति अन्य कार्यों में लगा रहता है। कोई भी कार्य व्यक्ति स्वयं नहीं कर सकता, ईश्वरीय शक्ति के बिना वह कुछ भी नहीं। कविता में प्रियम्वद केशकम्बली भी कहता है– मैं तो स्वयं उस महाशून्य में खो गया था। वीणा के माध्यम से मैंने स्वयं को उस परम सत्ता को अर्पित किया और जो कुछ भी सुनायी दिया वह संगीत नहीं था, वह तो महाशून्य, महामौन विराटता थी, जो सदैव अखंड, अविश्वसनीय, अपमा रहित है। वही परम तत्व सबके भीतर शब्दहीन संगीत का सृजन करता है। तभी अज्ञेय लिखते हैं–

सुना आपने जो वह मेरा नहीं
न वीणा का था
वह तो सब कुछ की तथता थी
महाशून्य
वह महामौन
अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय
जो शब्दहीन
सब में गाता है।[9]

नरेन्द्र देव वर्मा का कथन है "असाध्य वीणा अज्ञेय की

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सर्वाधिक लम्बी कविता है। इसमें कवि ने सृजन के क्षण की मौन अनुभूति विसर्जन और कला–प्रक्रिया का विवेचन किया है। रचना के क्षणों में सदैव आत्मविसर्जन करना पड़ता है, सृजन के माध्यम से अपना संस्कार करना पड़ता है... कवि का कथन है कि सृजन में उसका कोई योगदान नहीं। वह तो स्वयं को वीणा को समर्पित कर देता है तथा हमें जो कुछ सुन पड़ता है, वह कलाकार का नहीं होता–वीणा का भी नहीं होता। वह तो महाशून्य की मौन अनुभूति है। 10

अज्ञेय जी ने कविता में विराट्ता परम सता के प्रति आत्मविसर्जन, समर्पण का वर्णन किया है। यही आत्मविसर्जन परमसत्ता से साक्षात्कार करवाता है। वीणा से ध्वनित ध्वनि महाशून्य की मौन अनुभूति है। केशकम्बली प्रियंवद स्वयं को वीणा के प्रति समर्पित कर देता है। और स्वयं को भूल जाता है तभी वीणा को मौन टूटता है और उस ध्वनि का अनुभव हर किसी का अपना है, मौन अनुभूति जिसे वर्णित करना आसान नहीं।

कवि ने प्रस्तुत कविता में प्रकृति के अनन्त सौन्दर्य का वर्णन भी किया है। हरी घास वाली तलहटी में छोटे–छोटे पेड़ों की ओट में तलाब था। उसमें गर्जन, घुर्घर, चीख, मूक, गड़गड़ाहट, चिचियाहट आदि ध्वनियां हुआ करती थीं। जल में रहने वाले पक्षी कमल और कुमुदनी के पतों पर बिना ध्वनि किए तेज सफतार से यहाँ–वहाँ दौड़ा करते थे। कभी ऐसा लगता कि सूर्य की पहली किरण ओस को स्पर्श कर रही है। कवि ने प्रकृति के इस दृश्य का वर्णन अग्रलिखित पंक्तियों में किया है–

''मुझे स्मरण है
हरि तलहटी में, छोटे पेड़ों की ओट, ताल पर
बँधे समय वन पशुओं की नानाविध आतुर तृप्त पुकारों,

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गर्जन, घुर्घर, चीख मूल, हुक्का चिचियाहट
कमल–कुमुद पत्रों पर चोर–पैर द्रुत धावित
जलपंछी की चाप।
किरण भोर की पहली
जब तकती है ओस बूँद को।"[11]

डॉ0 देवीशरण रस्तोगी के अनुसार– "अज्ञेय की काव्य–रचना की चौथी प्रमख प्रवृत्ति है–प्राकृतिक सौन्दर्यानुभूति। अज्ञेय ने इस क्षेत्र में जिस उत्कृष्ट कोटि के रूप–बोध, रंगबोध, गंध–बांध तथा ध्वनि–बोध का परिचय दिया है, वह किसी से छिपा नहीं है। हिन्दी की काव्य रचना में उसकी समानता केवल छायावादी काव्य कर सकता है। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने उसकी भूरि–भूरि प्रशंसा की है– "अज्ञेय जी की इस नयी काव्य–सृष्टि में दो–तीन बातें हमारा ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करती हैं। एक तो है इस नयी काव्य–सृष्टि में प्रकृति के विभिन्न रूपों, गतियों और मुद्राओं का सफल अंकन। यद्यपि ये रूप, गतियाँ और मुद्रायें लेखक की आन्तरिक भावना से सम्पृक्त है परन्तु उसमें यथार्थता का पक्ष भी पूरी तरह भास्वर हो गया है।[12]

डॉ0 देवीशरण रस्तोगी ने अज्ञेय–क़ाव्य की जिस प्राकृतिक सौन्दर्यानुभूति का उल्लेख किया है, उसका साक्षात्कार हम असाध्य वीणा में भी कर सकते हैं। नन्द दुलारे वाजपेयी द्वारा वर्णित अज्ञेय–काव्य के विभिन्न प्रकृति रूपों को असाध्य वीणा में देखा जा सकता है। केशकम्बली प्रियंवद का विराट् किरीटी वृक्ष के तथा उसके आस–पास के वातावरण में डूब जाना हमें कविता में विभिन्न प्राकृतिक अनुभूतियों से परिचित करवाता है। वास्तव में प्रकृति परम सत्ता का अंश है और इसी अंश ने वीणा के निर्माण में अहम् भूमिका निभायी है।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चंद्रकांत महादेव बांदिवडेकर के अनुसार– ''भारतीय पारम्परिक रहस्यवाद और अज्ञेय के रहस्यवाद में अनेक प्रकार का प्राकारिक अंतर है। अज्ञेय में मनुष्य जीवन और उसके विविध व्यापार के प्रति उपेक्षा भाव नहीं है, वैज्ञानिक विकास के प्रति उदासीनता नहीं है, मनुष्य की बौद्धिक एवं भावनात्मक उपलब्धियों के प्रति अस्वीकार नहीं है, विरक्ति की थोथी कल्पनाओं को स्थान नहीं है प्रकृति को हृदयंगम करने के लिए ईश्वरीय संकेत की आवश्यकता नहीं है, न उस पर परासत्ता के विराट् बिम्ब या प्रतीक का आरोपण आवश्यक है। [13]

बांदिवडेकर ने जहाँ अज्ञेय के रहस्यवाद को भारतीय पारंपरिक रहस्यवाद से भिन्न बताया है, तो दूसरी ओर नन्द किशोर आचार्य का मत है ''भारतीय न होने का आरोप अज्ञेय पर प्रारम्भ से, ही लगता रहा है जबकि वास्तविकता यह है कि आधुनक कविता में अज्ञेय भारतीय परम्परा की विशिष्ट कड़ी बनते हैं। [13]

अज्ञेय के रहस्यवाद में मनुष्य जीवन एवं विविध व्यापार के प्रति उपेक्षा भाव नहीं हैं, बौद्धिक और भावनात्मक उपलब्धियों के प्रति भी अस्वीकार्य नहीं 'असाध्य वीणा' इसका प्रमाण है। पर भारतीय पारम्परिक रहस्यवाद विरक्ति थोथी कल्पनाओं और ईश्वरीय संकेतों से लैस नहीं है। पारम्परिक रहस्यवाद में जिज्ञासा, प्रयत्न और संयोग की अवस्थाएँ हैं। अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' में भी हमें ये तीनों अवस्थाएँ देखने को मिलती हैं। अज्ञेय का रहस्यवाद पारम्परिक रहस्यवाद से भिन्न नहीं, बल्कि पारम्परिक रहस्यवाद को साथ लेकर चलता है। असाध्य वीणा में प्रियंवद राजसभा से विरक्त हो वीणा जिस वृक्ष से बनी है और जिस वातावरण में बनी है, उस कल्पना में डूब जाता है। प्रकृति के अनन्त सौन्दर्य की कल्पना करता है। वीणा का साध्य होना, वीणा की ध्वनि ईश्वरीय संकेत है और परम सता के इस संकेत को सभी भिन्न–भिन्न रूपों में ग्रहण करते हैं। प्रियंवद का

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

वीणा बनने की कल्पना में लीन होना ईश्वर परमसत्ता के प्रति समर्पण का प्रतीक है। वीणा का बज उठना सच्ची साधना की सफलता का प्रतीक, ईश्वर की अपार कृपा–दृष्टि का प्रतीक है। यदि साधना अन्तर्मन से समर्पित है, तो उसमें सफलता निश्चित है।

नन्द किशोर आचार्य का मत कि अज्ञेय की कविताएँ भारतीय परम्परा की कड़ी हैं, पूर्ण रूप से सत्य है। 'असाध्य वीणा' इस वक्तव्य का प्रत्यक्ष प्रमाण है। एक तो यह कविता भारतीय पारम्परिक रहस्यवाद से जुड़ी है तो दूसरी ओर वीणा का बज उठना भारतीय समाज में रहने वाले अलग–अलग वर्ग के लोगों का उसे अलग–अलग रूप में ग्रहण करना भारतीयता की ही छाप है।

एक अन्य स्थान पर नन्द किशोर आचार्य लिखते हैं– 'मानव और मानव की यह सम्बन्ध चेतना अज्ञेय काव्य में अधिक विस्तृत अर्थ में 'मम' और 'ममेतर' की सम्बन्ध–चेतना है। यह 'मम' तो मानव है ही, 'ममेतर' में भी मानव का बहिष्कार नहीं है–बल्कि मानव समेत सारा परिवेश ही 'ममेतर' है। इसी कारण अज्ञेय का आध्यात्मिक 'तू' भी मानव एवं वस्तु जगत् में ही अभिव्यक्त होता है। और उसी के माध्यम से अज्ञेय न केवल आध्यात्मिक 'तू' तक पहुँचते हैं वरन् अपने को भी पहुँचाते हैं और तभी 'ममेतर' के प्रति कृतज्ञता भी अनुभव करते हैं। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि अज्ञेय की आध्यात्मिक अनुभूति सहज साक्षात् की ही अनुभूति है: वह आध्यात्मिक सता में व्यक्ति की विलीनीकरण नहीं–व्यक्ति और आध्यात्मिक सता के बीच संवाद विधान है। इस संवाद विधान में मानव का स्वतंत्र अस्तित्व बना रहा है। यही कारण है कि अज्ञेय में 'मैं' और 'तू' का बोध बना रहता है।'[14]

उपर्युक्त कथन पूर्ण रूप से सही है। असाध्य वीणा में भी 'मैं' और 'तू' अर्थात् 'मन' और 'ममेतर' उपस्थित है। 'मैं' प्रियंवद 'तू' अर्थात् आध्यात्मिक सत्ता के प्रति नतमस्तक है। प्रियंवद वीणा से आँखे बन्द कर संवाद कर रहा है और इस संवाद में उसका स्वतन्त्र

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अस्तित्व है और फिर अचानक वीणा का बज उठना सहज आध्यत्मिक अनुभूति का साक्षात् है। अज्ञेय का आध्यात्मिक तू राजसभा में वीणा के माध्यम से कविता में व्यक्त होता है।

''असाध्य वीणा'' एक चीनी आख्यान के ऊपर आधारित है। इस आख्यान के अनुसार एक बड़ा पवित्र वृक्ष है, उसके सार भाग की लकड़ी से एक साधक ने एक वीणा गढ़ी, किन्तु वह स्वयं उसे बजा न सका, उस वीणा को कोई दूसरा कलाकार भी न बजा सका। अन्त में एक साधक आता हैं और अपने को वीणा और वीणा के महान् पवित्र वृक्ष के प्रति अर्पित करता है। एक तरह से वह बजता नहीं, स्वयं बजना चाहता है और वीणा उसके बजने की प्रक्रिया में बज उठती है। आख्यान को इस कविता में दो नये सन्दर्भ दिए गए हैं। पहला सन्दर्भ है, विभिन्न प्रकार की मानवेतर स्थूल और सूक्ष्म प्रकृति ध्वनियों के सम्भार के साथी और गृहीता रूप में किरीटी तरू को देखना। दूसरा सन्दर्भ है इस समष्टि ध्वनि के ध्यान के द्वारा मुखरित वीणा के स्वर में मनुष्य का अपने भीतर की आकांक्षा की पूर्ति कराने वाली ध्वनि का साक्षात्कार।''15 चीनी आख्यान पर लिखी यह कविता पूर्ण रूप से भारतीय संस्कृति से संपृक्त है। इस तथ्य पर नन्द किशोर आचार्य का मत पूर्ण रूप से स्वीकार्य है कि ''अज्ञेय भारतीय संस्कृति से कितने गहरे स्तर पर संपृक्त है, हमारे सांस्कृतिक अनुषंगों के प्रति उनका अनुराग इसका प्रमाण है। इससे इस बात का भी पता चलता है कि अज्ञेय ने विदेशी प्रभाव को भी भारतीय सन्दर्भ में ही ग्रहण किया है।[16]

आचार्य जी का अज्ञेय विषयक मत पूर्ण रूप से सटीक है। विद्यानिवास मिश्र जी ने इस कविता के दो सन्दर्भ प्रस्तुत किये हैं, एक तो मानवेतर किरीटी तरू के माध्यम से प्रकृति का स्वरूप तथा दूसरा समाज मे वीणा की ध्वनि का मनुष्य की आकांक्षा पूर्ति के रूप में साक्षात्कारं थे दोनों ही रूप कविता के सत्य को हमारे सम्मुख

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अपस्थित करने में सहायक हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि असाध्य वीणा जहाँ रहस्यवादी कविता है, वहाँ जीवन दर्शन से भी साक्षात्कार कराती है। प्रकृति के अनन्त सौन्दर्य के माध्यम से परमसता की अनुभूतिनिष्ठता का आभास होता है। अज्ञेय के काव्य विषयक मतों में आचार्य विद्यानिवास मिश्र तथा नन्द किशोर आचार्य के मत सटीक प्रतीत होते हैं।

सन्दर्भ–सूची

1. रामचन्द्र वर्मा (संपा0), मानक हिन्दी कोश, (खण्ड चौथा), (प्रयागः हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1965), पृ. 489
2. रामचन्द्र वर्मा (संपा0), लोकभारती प्रामाणिक हिन्दी कोश, (इलाहाबादः लोकभारती प्रकाशन 1997), पृ. 703
3. विद्यानिवास मिश्र (संपा.), अज्ञेय परिचय एवं प्रतिनिधि काविताएँ, (दिल्लीः राजपाल एण्ड सन्ज़, 1998), पृ. 94–96
4. विद्यानिवास मिश्र (संपा.), अज्ञेय परिचय एवं प्रतिनिधि काविताएँ, (दिल्लीः राजपाल एण्ड सन्ज़, 1998), पृ. 94–99
5. वही, पृ. 102
6. विद्यानिवास मिश्र (संपा.), रीतिविज्ञानः सर्जनात्मक समीक्षा का नया आयाम, (दिल्ली : कृष्णा प्रकाशन, 1973), पृ. 170–171
7. चन्द्रकांत महादेव बांदिवडेकर, अज्ञेय की कविता एक मूल्यांकन, (इलाहाबादः सरस्वती प्रेस, 1971), पृ. 85
8. विद्यानिवास मिश्र (संपा.), अज्ञेय परिचय एवं प्रतिनिधि काविताएँ, (दिल्लीः राजपाल एण्ड सन्ज़, 1998), पृ. 103–104
9. विद्यानिवास मिश्र (संपा.), रीतिविज्ञानः सर्जनात्मक समीक्षा

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

का नया आयाम, (दिल्ली : कृष्णा प्रकाशन, 1973), पृ. 103–104

10. चन्द्रकांत महादेव बांदिवडेकर, अज्ञेय की कविता एक मूल्यांकन, (इलाहाबादः सरस्वती प्रेस, 1971), पृ. 88
11. विद्यानिवास मिश्र (संपा.), अज्ञेय परिचय एवं प्रतिनिधि काविताएँ, (दिल्लीः राजपाल एण्ड सन्ज़, 1998), पृ. 105
12. नरेन्द्र देव वर्मा, अज्ञेय और समकालीन काव्य, (इलाहाबादः रचना प्रकाशन, 1979), पृ. 50–51
13. विद्यानिवास मिश्र (संपा.), अज्ञेय परिचय एवं प्रतिनिधि काविताएँ, (दिल्लीः राजपाल एण्ड सन्ज़, 1998), पृ. 100
14. डॉ0 देवीशरण रस्तोगी, अज्ञेय, (मेरठः राजहंस प्रकाशन मन्दिर, 1970), पृ. 25–26
15. चन्द्रकांत महादेव बांदिवडेकर, अज्ञेय की कविता एक मूल्यांकन, (इलाहाबादः सरस्वती प्रेस, 1971), पृ. 88
16. नन्द किशोर आचार्य, अज्ञेय की काव्य तितीर्षा, (बीकानेरः सूर्य प्रकाशन कंदिर, 1970), पृ0 121
17. नन्द किशोर आचार्य, अज्ञेय की काव्य नितीर्षा, (बीकानेरः सूर्य प्रकाशन मंदिर, 1970), पृ0 126
18. विद्यानिवास मिश्र (संपा.), रीतिविज्ञानः सर्जनात्मक समीक्षा का नया आयाम, (दिल्ली : कृष्णा प्रकाशन, 1973), पृ. 176–177
19. नन्द किशोर आचार्य, अज्ञेय की काव्य तितीर्षा, (बीकानेरः सूर्य प्रकाशन मंदिर, 1970), पृ0 126

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बच्चन के लोकप्रिय गीतों में समांतरता

डॉ. अमिता शर्मा

सामान्य परिचय– 'शैली विज्ञान' आधुनिक युग का एक नवीन तथा महत्वपूर्ण सिद्धांत है। साधारण शब्दों में शैली के वैज्ञानिक अध्ययन–विश्लेषण को शैली विज्ञान कहा जाता है। इसके अन्तर्गत शैली के विभिन्न अभिकरण अथव तत्वों की विशेष भूमिका रहती है। चयन, विचलन, समांतरता, विरलन, विपथन, प्रोक्ति शैली के मुख्य तत्व हैं। 'समांतरता' शैली का प्रमुख तथा सौन्दर्यवर्द्धक तत्व माना जाता है। भाषा सौन्द्रर्य में वृद्धि करने और भावाभिव्यक्ति को सशक्त बनाने के लिए 'समांतरता' नामक तत्व महत्वपूर्ण भूमिका अभिनीत करता है। यहां 'समांतरता' के आधार पर डॉ0 हरिवंश राय , बच्चन के लोकप्रिय गीतों का अध्ययन–विश्लेषण किया गया है। डॉ0 बच्चन हिन्दी गीति–काव्य के महान् कवि रहे हैं। इनके गीतों में समांतरता का गुण प्रचुर मात्रा में देखा जा सकता है। यदि कहा जाये कि डॉ0 बच्चन के गीतों में शैली के अन्य तत्वों की अपेक्षा 'समांतरता' ही अधिक दिखाई देती है तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'समांतरता' के आधार पर इनके गीतों का अध्ययन विश्लेषण करने से पूर्ण 'समांतरता' के अर्थ व स्वरूप को जानना भी अत्यन्त आवश्यक है।

समांतरता–अर्थ व स्वरूप– 'समांतरता' अंग्रेजी के "Parallelism" का हिन्दी रूपांतरण है। साधारण शब्दों में–जब किसी रचना में समान या विरोधी इकाइयों की एक या अधिक बार आवृति होती है तो वहां 'समांतरता' की प्रवृति आ जाती है। इसके लिए "Backgrounding" तथा "Foregrounding" शब्दों का उपयोग भी किया जाता है।

डॉ0 पाण्डेय शाशिभूषण 'शीतांशु' के शब्दों में – ''समांतरता (Parallelism) शब्द का पहला प्रयोग आज से दो सौ वर्ष पहले किया गया था। बाईबल की प्रसिद्ध छंदोयोजना में उसके पदों की द्विपदी (Couplets) संघटना के संदर्भ में उसकी वर्णनाव्याख्या के लिए 'समांतरता' (Parallelism) का मूल पद पहली बार प्रस्तुत हुआ था।''[1]

भोलानाथ तिवारी के शब्दों में– ''समानान्तरता से आशय है– किसी रचना में समान या विरोधी भाषिक इकाइयों का समानान्तर प्रयोग। इसमें समान भाषिक इकाई की एक या अधिक बार आवृति होती है अथवा दो या अधिक विरोधी भाषिक इकाइयाँ साथ–साथ आती है अर्थात् इनमें समान या विरोधी संतुलन होता है और यह संतुलन समानन्तरता के कारण ही संभव होता है।''[2]

रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव कहते हैं– ''समानान्तरता का अर्थ है किसी भाषिक लक्ष्य या विधान की पुनरावृति की नियमितता।''[3]

तिवारी जी 'व्यावहारिक शैली विज्ञान' में कहते हैं– ''यह एक तकनीकी शब्द है। एक ही ध्वनि, शब्द एक ही प्रकार के रूप और वाक्य का एक ही वर्ग के अर्थ का बार–बार प्रयोग तो समतामूलक

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समानान्तरता होती है तथा विरोधी का साथ–साथ प्रयोग हो तो विरोधामूलक समानान्तरता।''[4]

यहां भोलानाथ तिवारी जी ने समानान्तरता के प्रकारों के आधार पर इसके अर्थ को स्पष्ट करने का सफल प्रयास किया है। इस प्रकार विद्वानों ने शैली के तत्व 'समांतरता' को स्पष्ट करने के अनेक प्रयास किये हैं।

समांतरता के प्रकार अथवा स्तर– विद्वानों ने समांतरता के स्तर अथवा प्रकारों के विषय में अपने–अपने मत व्यक्त किये हैं। परन्तु मुख्य रूप से ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य ही इसके प्रमुख स्तर स्वीकार किये जाते हैं। इन्हीं स्तरों को आधार मानकर डॉ0 हरिवंश राय बच्चन के गीतों का अध्ययन विश्लेषण किया जा रहा है।

बच्चन के लोकप्रिय गीतों में समांतरता– शैली के प्रमुख तत्व 'समांतरता' के आधार पर डॉ0 बच्चन के गीतों का अध्ययन विश्लेषण निम्नलिखित ढंग से किया जा सकता है।

1. ध्वनीय समांतरता– जहाँ ध्वनियों की समान या विरोधी आवृति होती है, वहां ध्वनि स्तर की समांतरता उपस्थित होती है। डॉ0 बच्चन के गीतों में ध्वनि–स्तर की समांतरता सरलता से दिखाई दे जाती है जो इनके गीतों के सौन्दर्य को और भी निखार देती है।

यथा –''कल क्रूर काल के गालों में
जाना होगा – इस कारण ही।''[5]

एक काव्यांश में प्रथम पंक्ति में 'क' वर्ण की आवृति होने के कारण ध्वनि–स्तर की समांतरता है।

एक अन्य उदाहरण – ''मयूरी,
नाच, मगन–मन नाच!

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गगन में सावन घन छाए।''

6

यहाँ 'न' तथा 'ग' वर्ण की बार–बार आवृति के कारण ध्वनीय समांतरता उत्पन्न होती है।

2. शब्दीय समांतरता– शब्दीय समांतरता के अन्तर्गत समान शब्दों का उपयोग एक या अधिक बार किया जाता है। ये दो प्रकार की होती है–

(क) समतामूलक शब्दीय समांतरता (ख) विरोधमूलक शब्दीय समांतरता

समातामूलक शब्दीय समांतरता में एक समान शब्दों की तथा विरोधमूलक शब्दीय समांतरता में विरोधी शब्दों की आवृति होती है।

समतामूलक शब्दीय समांतरता के विषय में कश्मीरी लाल सैनी कहते है– ''यह वहां होती है, जहाँ एक शब्द की आवृति के द्वारा कथन को प्रभावी बनाया गया हो।'' [7]

डॉ0 बच्चन के के गीतों में शब्दीय समांतरता का गुण प्रचुर मात्रा में है।

यथा – ''अश्रु पुराने, आह पुरानी
युग बाहों की चाह पुरानी,
उथले मन की थ़ाह पुरानी
वहीं प्रणय की रराह पुरानी
अर्ध्य प्रणय का कैसे अपनी।'' [8]

इस काव्यांश में 'पुरानी' तथा 'प्रणय' शब्दों की आवृति के कारण समतामूलक शब्दीय समांतरता है।

विरोधामूलक शब्दीय समांतरता सम्बन्धी एक उदाहरण इस

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रकार है –

''सेज सजा सब दुनिया सोई
यह तो कोई तर्क नहीं है,
क्या मुझमें–तुझमें, दुनियां में
सच कह दे, कुछ फर्क नहीं है।'' [9]

यहाँ 'मुझमे–तुझमें' विपरीत शब्दों के प्रयोग के कारण विरोधमूलक शब्दीय समांतरता उपस्थित होती है।

3. रूपीय समांतरता – जहाँ कारक चिह्नों अथवा विभक्तियों की आवृति होती है, वहाँ रूप स्तर की समांतरता होती है।

डॉ0 पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु' के शब्दों में ''जब भाषा के रूपिम–विशेष का आवर्तन होता है, तब रूप स्तरीय समतामूलक समान्तरता उपस्थित हाती है। रूप–स्तर पर विरोधी समांतरता वहां उपस्थित होती है जहाँ एकवचन, बहुवचन, पुलिंग–स्त्रीलिंग, भूतकाल–वर्तमानकाल के विरोधी रूप रचनाकार की भाषा में उपस्थित होते हैं।'' [10]

डॉ0 बच्चन के काव्य में रूप–स्तर की समांतरता अत्यन्त आकर्षक रूप में दिखाई देती है। बच्चन–कृत 'ध्वनि खोजता हूँ' नामक पूरे गीत में रूप–समांतरता के सून्दर दर्शन होते है।

यथा– ''मैं प्रतिध्वनि सुन चुका, ध्वनि खोजता हूँ।
मौन मुखरित हो गया, जय हो प्रणय की,
पर नहीं परितृप्त है तृष्णा ह्रदय की,
पा चुका स्वर, आज गायन खोजता हूँ।
मैं प्रतिध्वनि सुन चुका, ध्वनि खोजता हूँ।
तुम समर्पण बन भुजाओं में पड़ी हो,

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उम्र इन उद्भ्रान्त घड़ियों की बड़ी हो,
पा गया तन आज मैं मन खोजता हूँ
मैं प्रतिध्वनि सुन चुका, ध्वनि खोजता हूँ।
है अधर में रस मुझे मदहोश कर दो
किंतु मेरे प्राण में सन्तोष भर दो,
मधु मिला है, मैं अमृतकण खोजता हूँ
मैं प्रतिध्वनि सुन चुका, ध्वनि खोजता हूँ।
जी उठा मैं, और जीना प्रिय बड़ा हैं,
सामने, पर, ढेर मुरदों का पड़ा है।
पा गया जीवन, सजीवन, खोजता हूँ,
मैं प्रतिध्वनि सुन चुका, ध्वनि खोजता हूँ।'' [11]

इस गीत में 'मैं' हूँ' 'की' 'हो' 'में' 'है' की आवृति होने के कारण रूप–स्तर की समांतरता उत्पन्न होती है।

वाक्यीय समांतरता – जहाँ वाक्यांशों, पदबन्धें तथा उपवाक्यों की आवृति होती है, वहां वाक्य स्तर की समांतरता पाई जाती है। यह भी दो प्रकार है – क. समतामूलक ख. विरोधमूलक।

डॉ0 हरिवंश राय बच्चन ने भावों को प्रभावशाली और सशक्त बनाने के लिए अनेक स्थलों पर वाक्यांशों, उपवाक्यों को दोहराया है जिस कारण वहां समांतरता का गुण स्वतः ही आ गया है।

यथा– ''गंगा की लहर अमर है
गंगा की
धन्य भगीरथ
के तप का पथ
गंगा कंपा थरथर है

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गंगा की
गंगा की लहर अमर है।
नभ से उतरी
पावन पुतरी
दृढ़ शिव–जूट–जकड़ है।
गंगा की
गंगा की लहर अमर है।
बांध न शंकर
अपने सिर पर
यह धरती का वर है
गंगा की
गंगा की लहर अमर है।'' [12]

इस लोक–गीत में 'गंगा की लहर अमर है' वाक्य की आवृति तथा 'गंगा की' पदबन्ध की आवृति के कारण वाक्य–स्तर की समांतरता है।

5. अर्थ समांतरता–

समांतरता के अन्तर्गत अर्थ स्तर पर दो पंक्तियों में दो अर्थ समांतर चलते है। यह भी दो प्रकार की हाती है– समतामूलक और विराधमूलक।

समतामूलक अर्थीय समांतरता वहां होती है जहाँ पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त विरोधामूलक अर्थ स्तरीय समांतरता वहां उत्पन्न होती है जो दो विराधामूलक भार्षिक इकाईयां साथ–साथ आती है। बच्चन जी के गीतों में इस प्रकार की समांतरता बड़े सुन्दर रूप में दिखाई देती है।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'जुगनू' नामक गीत में बच्चन कहते हैं–

''मगर इस रात में भी लौ
लगाये कौन बैठा है?
अंधेरी रात में दीपक जलाये कौन बैठा है?''

यहाँ दोनों पंक्तियों में जुगनू की उपस्थिति की बात कही गई है, इस कारण यहाँ समतामूलक अर्थीय समांतरता है।

अन्य उदाहरण–

''थी तृषा जब शीत जल की
खा लिये अंगार मैंने
चीथड़ों से उस दिवस का
कर लिया श्रृंगार मैंने।''

यहाँ प्रथम पंक्ति में शीतल जल और दूसरी में अंगार की बात होने के कारण अर्थ–स्तरीय विरोधमूलक समांतरता उत्पन्न होती है।

निष्कर्ष– निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शैली के मुख्य तत्व 'समांतरता' के आधार पर डॉ0 हरिवंश राय बच्चन के गीत अत्यन्त सुन्दर तथा मनोहारी है। समांतरता वास्तव में भावों की गहराई को व्यक्त करने का सुन्दर अभिकरण है। इस अभिकरण का सुन्दर प्रयोग करके डॉ0 बच्चन ने अपने गीतों को अद्‌भुत तथा मनोहारी अभिव्यक्ति प्रदान की है। अतः कहा जा सकता है कि – 'समांतरता' के आधार पर डॉ0 बच्चन के लोकगीत अत्यन्त उत्कृष्ट है।

सन्दर्भ–सूची

1. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु'– 'शैली और शैली विश्लोषण वाणी प्रकाशन, 21–ए,

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दरियागंज, नई दिल्ली – 110002, सं0 2007, पृ0–239

2. भोलानाथ तिवारी– 'शैलीविज्ञान' शब्दकार, 159, गुरू अंगद नगर (वैस्ट) दिल्ली– 110092 सं0 1997, पृ0'101

3. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव– 'संरचनात्मक शैलीविज्ञान', आलेख प्रकाशन, सं. 1979, पृ0 58

4. भोलानाथ तिवारी – 'व्यावहारिक शैलीविज्ञान', शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, पृ0 46

5. हरिवंश राय बच्चन– 'बच्चन के लोकप्रयि गीत' हिन्दी पॉकेट बुक्स प्रा. लि. जे–40, जोरबाग लेन, नई दिल्ली–110003, सं. अप्रैल 2007, पृ. 16

6. हरिवंश राय बच्चन– 'वही' पृ. 57

7. कश्मीरी लाल सैनी– 'श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों का शैली–वैज्ञानिक विश्लेषण', गुरू नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

8. हरिवंश राय बच्चन– 'वही' पृ. 47
9. हरिवंश राय बच्चन– 'वही' पृ. 78
10. हरिवंश राय बच्चन– 'वही' पृ. 276
11. हरिवंश राय बच्चन– 'वही' पृ. 68
12. हरिवंश राय बच्चन– 'वही' पृ. 100

अस्सिटैन्ह प्रोफेसर
(संगीत वाद)
यूनीवर्सिटी कॉलेज कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय
कुरूक्षेत्र

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बंजारा जाति की सामाजिक संरचना

डॉ. विजयकुमार वेदालंकार

बंजारा समाज का भारतीय घुमन्तु जनजातियों में समावेश किया जाता है। यद्यपि बनजारा घुमन्तु कहलाते रहे हैं तथापि जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं और आधुनिक युग की सभ्यता तथा संस्कृति के विकास ने उन्हें अब स्थायी रूप से किसी न किसी स्थान पर बसने को बाध्य कर दिया है। उन्होंने आनी बस्त्याँ (टाँडा) बसाई हैं।

विदर्भ में प्रायः सभी बंजारे स्थायी रूप से बस गये हैं और अब उनकी स्थायी संपति भी है। विदर्भ में बसे बंजारो ने मुख्य रूप से कृषि का व्यवसाय (कृषका और मजदूर) अपनाया है। शिक्षा के प्रचार और प्रसार, विशेष रूप से स्वातंत्र्योतर काल में शिक्षा के कारण वर्तमान युवा पीढ़ी के लोगों को अध्ययन के भरपूर अवसर मिले हैं। परिणामस्वरूप, वे अच्छी नौकरियों में व पदों पर आये हैं और व्यवसाय में भी प्रवेश किया है। शैक्षिका, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक सभी क्षेत्रों में उन्होने सम्यक् प्रगति की है।[1]

आधुनिक सभ्यता, संस्कृति, शिक्षा एवं विज्ञान की प्रगति ने

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भारतीय जीवन का चित्र ही बदल दिया है। शहर ही नहीं गाँव पर भी इस प्रभाव को देखा गया है। परम्पराएँ, रीति–रिवाज तथा प्राचीन रूढ़ियाँ लुप्त होती जा रही हैं। नयी सभ्यता के अनुयायी प्राचीन को दकियानूसी असंस्कृत एवं अनावश्यक घोषित करके उसकी और उपेक्षापूर्ण दृष्टि से देखने लगे हैं।

अब तक बंजारों को बनजारा या लभान शब्दों की शब्दकोषीय उत्पति के आधार पर वणज करने वाले अर्थात् वाणिज्यकार या व्यापारी ही माना जाता रहा है। बंजारों के व्यापारी होने की विद्वानों की राय को एकदम अस्वीकार नहीं किया जा सकता। अपने घुमन्तु जीवन में आजीविका के साधनों को उपलब्ध कराने के लिए बंजारों को यदि व्यापार करना पड़ता हो तो वह स्वाभाविक ही है।

इस समय बंजारे देश के सभी हिस्सों में फैले हुए दिखाई देते हैं। क्या वे आरंभ से ही किसी प्रदेश की सीमा में न बँधकर भारत में ही नहीं विदेशों में भी घूमते रहे अथवा वे किसी समय देश के किसी विशेष प्रांत में रहते रहे और वहाँ से कार्यवश दूर–दूर चले गये? यदि वे कभी किसी एक प्रांत में रहते थे तो उस प्रांत की सीमाएँ क्या थी? वे अपने प्रांत को छोड़कर दूर–दूर तक कयों गये?'

''संयोग से देश के विभिन्न भागों और विदेश में प्रवासित बंजारों और जिप्सी लोगों ने अपनी भाषा को बहुत कुछ सुरक्षित रखा है।''[3] जिप्सी भाषा अमेरिका आदि पश्चिम देशों में अभी भी प्रचलन में है। इन लोगों का लोक साहित्य भी सुरक्षित है। लोक साहित्य में उद्धत देवी देवताओं और स्थानों के आधार पर इनके मूल स्थान का पता लगाया जा सकता है।

वेशभूषा, रहन–सहन, रीति रिवाज, त्यौहार, विभिन्न संस्कारों से इनकी मूल स्थिति का पता चल सकता है। इसी बात को मद्देनजर रखकर यह सिद्ध करना आसान हो जाता है कि जिप्सी और बांजारा

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पूर्ववर्ती काल में, अपने जीवन की प्रारंभिकता में राजस्थान के निवासी हैं। इनका मूल स्थान राजस्थान ही है। बंजारों के नाम एवं लोकसाहित्य में प्रयुक्त स्थानों के नामों के आधार पर भी यह बात प्रमाणित हो जाती है।

बंजारा समाज आदिकाल से अपनी विभिन्नता को द्योतक रहा है। वह जैसे भिन्नता का परिचय देता है, वैसे ही अपने कार्य–प्रणाली, जीवन शैली एवं संस्कारों के आधार पर मूल स्थान के परिचय को किसी–न–किसी रूप में स्मरण करता हुआ दिखाई देता है, बंजारों का आधारभूत समाज राजस्थान सिंध और पंजाब में घुमन्तु जीवन बिताने वाली कुछ जातियों पर निर्भर था। ईसा से पहले से पहले यायावर राजस्थान से बाहर दूर–दूर तक जाते थे। बरार की 1881 की जनगणना रपट में लिखा गया है– ''उन बंजारों (और आज के बंजारों) में कोई अन्तर नहीं है, जिन्हें मद्रास प्रेसीडेन्सी में देवनेर ने देखा था और जिनका उल्लेख उसने यात्रा विवरण में 'मनारी' जाति के रूप में किया है और ऐरियन (ईसा पूर्व चौथी शाती) ने जिनका उल्लेख घुमन्तू जाति के रूप में किया था। बरार में आने से पहले वे लोग गोरखपूर से हरद्वार के बीच पहाड़ियों और घाटियों में बसे हुए थे।[4]

बंजारा शब्द की उत्पति

बनजारा शब्द की उत्पति के सम्बन्ध में विद्वानों ने अनेक मत व्यक्त किये है। एनीवेन ने लिखा है कि कुछ विद्धान बनजारा को संस्कृत के 'वन' (जंगल) तथा 'चर' (चरना या चलना) शब्दों से उत्पन्न मानकर उसे 'वन' में चलने वाला इस अर्थ मे प्रयोग करते हैं।[5]

बनजारा शब्द के इसी अर्थ का द्योतक एक छन्द भी लोक में प्रचलित है–

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'बनजारा बन में फिरे लिये लकड़िया हाथ

टोंडा वहाँ लड़ गया कोई संगी नहीं साथ।''

कुछ लोग बनजारा का अर्थ वन को जलाने वाला (वन+जारा) बताते हैं। किन्तु उत्पति सम्बन्धी इन मतों को मान्यता नहीं दी गयी। बनजारा का पर्सियन शब्द 'बिरनजार' से सम्बन्ध जोड़कर बनजारा को चांवला ले जाने वाला भी कहा गया है।[6]

एन्थोवेन के मतानुसार–बनजारा न तो केवल जंगल में घूमने वाला है और न ही केवल चांवला ले जाने वाला। उनके अनुसार बनजारा की सही उत्पति पंजाबी के 'वनज' या 'वनज' शब्द से है। आर. सी. टेम्पल ने भी इसी मत का समर्थन किया है। पंजाबी के इस 'बजन' का अर्थ होता है 'वाणिज्य' या व्यापार। संस्कृत में भी वाणिज्य शब्द का अर्थ व्यापार ही मिलता है। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर भी यही माना जाता है कि बनजारा एक व्यापारी जाति ही है। बनजारा समाज को विदर्भ तथा कुछ अन्य प्रदेशों में भी लभाण या लम्हाणी या लभाणी कहा जाता है। लभाण या लम्हाणी की उत्पति संस्कृत के 'लवण' शब्द से मानी जाकर लभाण के लवण या नमक का व्यापार करने वाला माना जाता है।[7]

श्री एल. के अनन्तकृष्ण अय्यर ने अपने ग्रंथ में बनजारा को संस्कृत के वाणिज्य शब्द से तथा लभाण या लम्हाणी को संस्कृत के लवण शब्द से उत्पन्न माना है। साथ ही बनजारा को बैलों पर अनाज लादकर ले जाने वाली एक व्यापारी जाति ही माना है।

श्री के. एस. गफूर ने लम्बाड़ी (लम्हाणी) तथा ब्रिजारी (बंजारी) शब्दों की उत्पति संस्कृत के लवण तथा बनिजार शब्दों से मानी है तथा कहा है कि बैलों पर अनाज लादकर काफिलों में फौजों को अनाज पहुँचाने का कार्य प्राचीन भारत में बनजारा लोग करते थे।[8]

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

श्री आर. वी. रसेल तथा रायबहादूर हीरालाल ने भी संस्कृत के वणज शब्द से बनजारा शब्द की उत्पति मानकर बनजारा का अर्थ वाणिज्यकार या व्यापारी दिया है।

बनजारा समाज के लोग भारत के विभिन्न प्रान्तों में मिलते हैं तथा उनके काम उन प्रान्तों में भिन्न–भिन्न है। राजस्थान, मध्यप्रदेश, पंजाब, उतरप्रदेश, महाराष्ट्र का कुछ भाग तथा आन्ध्र प्रदेश के कुछ भागों में ये बनजारा नाम से ही पहचाने जाते हैं। आन्ध्र प्रदेश के कुछ हिस्से में इन्हे लम्बाड़ी कहा जाता है जो विदर्भ के लम्हाणी या लामणी से मिलता जूलता है। इनमें लवण से उत्पन्न रूप लभान, लभाणी, लभान, लम्बाड़ी आदि है तथा वणज या वाणिज्य से उत्पन्न रूप बनजारा बंजारा, बंजारी, ब्रिंजार आदि है। ये दोनों रूप से इनके व्यापारी होने को ही सूचित करते हैं। इस प्रकार व्यापार हेतु घूमते रहने के कारण ही इनकी गणना घूमन्तू जातियों में की गयी।

डॉ. रामगोपाल सोनी ने अपने शोध प्रबन्ध में महाराष्ट्र में होने वाली किराना व्यापारियों की 'वाणी' का उल्लेख किया है जिसे हम बनिया कहते हैं। संस्कृत के वणिक से ही वाणी य बनिया की उत्पति को श्री सोनी ने प्रतिपादित किया है। उन्होंने अपने प्रबन्ध में आगे कहा है कि चाहमान लेखों में व्यापार करने वाले समूहों को वाणजारक कहा गया है–

'समस्त वणज़ारोणु वृषभजतु पाइलालंगमने''

सियादोनी लेख में भी उन्हें इसी प्रकार के अनेक व्यापारी नाम मिले है। गोरखनाथ ने चौदहवीं शताब्दी में हठयोग साधना का प्रचार करते समय शून्य का निर्देश करने में बनजारा शब्द का प्रयोग किया है जिसका अर्थ व्यापारी (वणिजारा) तथा व्यापार ही (वणज) होता है। गोरखनाथ ने अपने निर्देश में कहा हैं–

सुरहट घाट अम्हें वणिजारा,

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सुनि हमारा पसारा।
लेण ने जाणों देण न जाणों,
एद्धा वणज हमारा।[9]

लोकगीतों में भी बनजारा शब्द का प्रयोग व्यापारी अर्थ को ही व्यक्त करता है। जैसे–

'पियवा जे चलेला उतर
बनिजारिया कि कोई रे छह हैं ना।
मोरा उजडल बंगलवा
कि कई रे छह हैं ना।''

''पति उतर प्रदेश को वाणिज्य कर्म, अर्थात, व्यापार करने जा रहा है, मेरे उजड़े हुए बंगले को कौन मरम्मत करेगा?

मानवी लोक गीतों में बनजारा अपनी 'मोट' के लिए प्रसिद्ध हैं मोट बड़े प्रमाण में लाये हुए माल को कहते है। 'हल्दी' के नाम से विख्यात एक गीत की पंक्ति में बनजारा अपनी मोट के साथ वटवृक्ष के नीचे उतरा है तथा लाडले दूल्हे के काका उनसे मोल भाव कर रहे हैः–

''आई बणजारा री मोट अतरी बड़तले
मोलावे लाड़ला लाड़ा रा काकाजी।''

एक राजस्थानी लोक गीत में भी बनजारा शब्द का प्रयोग व्यापारी के अर्थ में ही मिलता हैंः–

बडले उतारां ढोला बणजारे ऱी मोट,
चोवटे उतारो रे मांजो सौदागिर जो बणियो रे
मांहारा राज।
कहे रे बणजारा त्हारी तम्बाकू रो मोल (कू)
रूपए री लोंसा रे असल तम्बाकू मालवी रे

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कांहारा राज।

साधारण रूप से बोलचाल की व्यवहार में लायी जाने वाली भाषा में भी बनजारा शब्द का प्रयोग व्यापारी के अर्थ को ही व्यक्त करता है। जैसे–

'सब ठाट पड़ा रह जायेगा

जब लाद चलेगा बनजारा''

इस लोक–प्रचलित रूप में भी बनजारा शब्द व्यापार को ही दर्शाता है। इस प्रकार ऊपर विवेचित प्रमाणों के आधार पर निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि व्यापार के हेतू घूमने वाले लोग ही बनजारा कहलाये। वैसे और भी व्यापारी जातियाँ भारत में रही होगी किन्तु बनजारा जाति मुख्यं रूप से व्यापारी जाति रही है।

बंजारा समाज का परिचय

बनजारा समाज के उत्सव–त्यौहार, गोत्र–कुछ वंशावली से पता चलता है कि यह जाति प्राचीन हिन्दू जातियों में से एक है। क्षत्रिय वंशियों के समाज ही इनके कुल और गौत्र हैं। ये पंच महाभूतों की पूजा, पितृपूजा और देवी पूजा करते हैं। वर्ण–व्यवस्था और जाति–व्यवस्था (जो हिन्दुओं की पहचान है) का इन बनजारों पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। उनकी दूसरी विशेषता है कि ये संस्कृति संस्कारों, पूजन आदि में पुरोहित–ब्रह्मण को नहीं बुलाते। तीसरी बात इनमें बली प्रथा और शराब पीने का रिवाज है।[10]

टाँडा पद्धति

बनजारा लोगों की बस्ती को टांडा कहते हैं। गाँवों से दूर इनकी बस्ती होती है। 40–50 घरों समूह टाँडा काहलाता हैं इनके घर प्राकृतिक साधनों से बनते हैं। दो बड़े खम्भे, जिन्हें बनजारा 'थम' कहते हैं, पर एक आड़ी लकड़ी रखी जाती है। आड़िये पर तिरछी

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रेखा में लकड़ी के दांडे रखे जाते हैं, जिसे ये 'काथा' कहते हैं, आधार हेतु दिए जाने वाले वनों को 'धुणी' कहते हैं। घर का छत पलाश पतों से छाया जाता है। घर ठिगना होता है और घर का मुख्य दरवाजा पूरब में होता है। कारण–सूरज के दर्शन उठे ही होने चाहिए ये सूर्यवंशी हैं, इसलिए पूर्वमुखी घर बनाते हैं। चूल्हा दाई ओर होता है। तीन पत्थरों का चूल्हा होता है, जिसे 'मंगाला' कहते हैं। चूल्हे में आग जलाते रहना हमेशा शुभ माना जाता है। चूल्हें में पानी डालकर आग बुझाना अशुभ माना जाता है। घर में दरवाजा न होने से ताला–चाबी का कोई झंझट नहीं होता, घर के भीरती कोने को 'खुठिया' कहते हैं। घर के बीच में मण्डपनुमा छाजन होता है, जिसे 'डागली कहते हैं। घर के सामने चौरस आँगन होता है, जिसमें गाय, बकरियाँ, भेंड़े बाँधी जाती हैं। आँगन के पश्चिम में मुर्गियाँ का दड़बा रहता है। घर से ही सटा हुआ पूर्वमुखी एक ठालिया होता है (कमरानुमा)। इस ठालिए में बनजारा परिवार की शाम बीतती है, बूढ़ी औरतें यही सोती हैं। मेहमान को ठालिए में ठहराया जाता है। ठालिए के आधे हिस्से में प्रायः रसोईघर होता है। यहीं पर पीने के परनी के मटके रखे जाते हैं। टाँडे के बाहर छोटी–सी मढ़इया होती है, जिसमें देवताओं का आवास रहता है।

नाईक–नायक–मुखिया

टाँडे का प्रमुख नाईक कहलाता था। समृद्ध परिवार का प्रमुख पुरुष नाईक बनता थां उसके घर को नाईक का घर और परिवार के सदस्य नाईक के रूप में ही सम्मानित थे। नाईक का पद वंश–परम्परा से प्राप्त होता है। नाईक एक तरह से टाँडे का राजा होता है। नाईक कहे और आँडा गर्दन हिलाए की स्थिति है। व्यापार, उद्योग, आन्तरिक व्यवहार नाईक की अनुमति से ही होता था। वह पंचायत में न्याय देने का काम भी करता है। नाईक का निर्णय ही अन्तिम होता है। दया, धर्म, सत्य, न्याय, सहिष्णुता, मिल–जुलकर

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रहना नाईक के गुण माने जाते हैं।[11]

धार्मिक क्रिया–कलाप, दैनिक व्यवहार में नाईक को पूछना अनिवार्य है। तीज का दिन, होली कहाँ जले का निर्णय वह करता है। विवाह सम्बन्धों की स्वीकृति नाईक ही प्रदान करता है। नाईक प्रायः अपनी प्रतिष्ठा के लिए दो स्त्रियों से विवाह करता था। उसकी पत्नी (पत्नियों) को भी टांडा सम्मान देता है।[12]

कारभारी (प्रबन्धक)

टाँडे का दूसरा महत्वपूर्ण व्यक्ति कारभारी होता है। टाँडे की सारी गतिविधियों पर नजर रखने का काम कारभारी करता है। नाईक के आदेशों का पालन होता है या नहीं, यह देखने का जिम्मा भी उसके पास है। नाईक के सामने किसी को हाजिर करना, सूचना देना, दण्ड वसूल करना आदि जिम्मेदारियाँ कारभारी वहन करता है। कारभारी की पत्नी को भी टाँडे में उतना ही सम्मान मिलता है। कारभारी आजकल तहसीलदार और टाँडे की कड़ी का काम करता है।

दालिया

टाँडे का सेवक दालिया कहलाता है। वह अन्य टाँड़ों को सन्देशा पहुँचाने का काम करता है। मांगलिक पर्व आयोजन चंग आदि बजाता है। टाँडे में वह अपनी गृहस्थी के साथ रहता है। वह बख्शीश भी प्राप्त करता है। सणार (सुनारी काम करने वाला प्रायः मुस्लिम) हजाम (नाई) दाढ़ी–भाटों की तरह पवाड़े गाने का काम तथा रिश्ते जोड़ने का काम करता है। इन लोगों से गोर बंजारे बेटी–व्यवहार नहीं करते हैं।

इस तरह बनजारों की टाँडा व्यवस्था बनाई जा सकती है।

पंचायत व्यवस्था

जात पंचायत का काम न्यायदान करना है। टाँडे की बदनामी

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

न हो, आपस का बैर मिट जाए, शान्ति बनी रहे, इसलिए जात–पंचायत न्याय देकर प्रश्नों को सुलझती हैं।

जात–पंचायत को 'मलाव' कहते हैं, जिस पर अन्याय हुआ होता है, वह अपनी फरियाद लेकर नाईक के घर पर जाता है और नाईक पंचायत बुलाता है। पंचायत में पंच बूढ़े–अनुभवी व्यक्ति होते हैं। पंचायत टाँडे से दूर किसी पेड़ के नीचे बुलाई जाती है। कारण स्त्रियों और बच्चों पर पंचायत के प्रश्नोतरों का परिणाम न हो, इसका ध्यान रखा जाता है। यदि पंचायत स्त्री के सन्दर्भ में हो, तो उसे अपनी बात कहने के लिए पंचायत में बुलाया जाता है। बनजारा समाज में स्त्रियाँ पंच नहीं होती।

पंचायत में अपने वाले विषय प्रायः स्त्री सम्बन्धित होते हैं। पारिवारिक संघर्ष, अनैतिक सम्बन्ध, विवाह, तलाक, चोरी, स्थावन–जंगम सम्पति आदि विषयों पर निर्णय होता है। यदि विषय गम्भीर हो तो आसपास के टाँडों के नाईक और प्रतिष्ठित व्यक्तियों को बुलाया जाता है। बुलाने के लिए दो आदमी जाते हैं, जिन्हें 'जोडी' कहते हैं। पंचायत की अध्यक्षता नाईक करता है और नियंत्रण का काम भी वही करता है। पंचायत शुरू होने से पहले एक–दूसरे का कुशल–क्षेम पूछा जाता है। स्वागतार्थ निम्न दोहा बोला जाता है।

''पंच पंचायत राजा भोजेर सभा
सगल कचेरी पचावे जगत
साईर तो सुबा कलेर तो दिवा
पाडा पीतत नायकडार नायक
सगेर आंनद भाईर कसले
सगी से आपण कसल घ
हां भाई हां कसल घ.... ।'

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कुशलाक्षेम पूछने पर उतने ही आदर से दूसरा समूह कुशलाक्षेम पूछता है

आरोपी खड़ा होकर अपने आरोपों का खण्डन करता है। फरियादी और आरोपी दोनों से सवाल पूछे जाते हैं। सच्चाई परखी जाती है। अन्त में पंच आपस में सलाह–मशविरा करते हैं और अपराधी और अपराध पर निर्णय लिया जाता है। उस समय पंचायत की सभा शान्त रहती है। पंचायत के कुछ सदस्य अलग जाकर सजा का निर्णय नायक को बताते हैं और नायक सबको निर्णय सुना देता ह। यदि उसे लगता है। (आरोपी को) कि उस पर अन्याय हुआ है, तो दूसरे टाँडे के नायक से न्याय माँग सकता है, जिसे 'नसाब' कहते हैं

पंचायत में नसाबीं, असाबी, नायक, कारभारी की विशेष उपस्थिति होती हैं। सुलह कराने की उनकी विशेष पद्धति है। समझौता कराने वाला व्यकित यदि देखता हैं कि ये दोनों सुन नहीं रहे हैं तो वह अपने सिर की पाग लड़ने वालों के बीच में रख देता है और दोनों पक्ष शान्त हो जाते हैं। बनजारा पंचायत तकरीबन चार–पाँच दिन चलती है। खाने–पीने की सुविधा टाँडे के बाहर जंगल में ही होती है, जिसे रसोई कहते हैं। दोषी व्यक्ति को पंचायत का सारा खर्चा वहन करना होता है।

सजा गुनाह की तीव्रता के अनुसार मिलती है। नगद जुर्माना, पूरे गाँव को खाना खिलाना, मुआवजा देना, समाज से निष्कासित करना आदि।

बंजारा परिवार

पारम्परिक बनजारा समाज में संयुक्त परिवार व्यवस्था थी। माता–पिमा, सन्तानें, भाई–बहन–विधवा–विधुर सबका समावेश परिवार में होता है। वयोवृद्ध व्यक्ति परिवार का मुखिया होता है।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विवाह होने पर यदि कोई लड़का अलग रहने का विचार करें तो उसे सम्पति का हिस्सा नहीं दिया जाता। संयुक्त परिवार को बनजारा मोठों खटलों कहते हैं। अनेक परिवारों का टांडा तैयार होता है। अन्य टाँडे के व्यक्ति को यदि इसमें प्रवेश करना हो तो नाईक की अनुमति आवश्यक होती है। लड़का कमाऊ होने पर उसका पिता परिवार के सारे सूत्र दे देता है।

बनजारा परिवार पितृसतात्मक परिवार है। स्त्रियों को परविार में गौण स्थान प्राप्त है। घर की सफाई, व्यवस्था, उत्पादन में बनजारा स्त्री का योगदान महत्वपूर्ण हैं। वयोवृद्ध स्त्री परिवार की अन्य स्त्रियों का नेतृत्व करती है। पुरुष की गैर मौजूदगी में स्त्री कुटुंब प्रमुख का कार्य करती है। बडे भाई की पत्नी को सम्मान का स्थान प्राप्त है।

बनजारा, समाज में बहुपत्नीत्व की प्रथा है। अनेक विवाह करना वीरता का लक्षण माना जाता है।

बनजारा स्त्री–पुरुष खुले में नहाते हैं। घर के सामने एक बड़ा पत्थर होता है, जिस पर बैठकर स्नान करते हैं। रोज नहाना वे आवश्यक नहीं मानते। बहुओं को स्नान के लिए सास की अनुमति आवश्यक होती है। कभी–कभी सात आठ–आठ दिन अनुमति नहीं देती। ऐसी स्थिति में बहू चोरी–चोरी नदी–झरने पर स्नान कर लेती थीं शायद इसका कारण पेयजल की कमी और राजस्थान का शुष्क वातावरण रहा होगा।

पारिवारिक नियम

रजस्वला को पाँच दिन घर के बाहर रहना पडता था। हैजा, शीतला, छोटी माता, आखों की बीमारी को वे देवी का कोप समझते हैं। इसलिए पति–पत्नी को ब्रह्मचर्य पालन करना होता है। ससुर को बहू 'वडारी' सम्बोधन करती थी, आजकल 'मामा' कहती है। पति के बड़े भाई को 'जेठजी' कहा जाता है। जेठ–ससुर के सामने घूँघट

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लेना आवश्यक है। सास को माँ कहा जाता है। पति के छोटे भाई को देवर कहते हैं। देवर–भौजाई, साला–साली के सम्बन्ध मजाकिया होते हैं। बुआ को फूफी कहते हैं और उसके पति को फूफा पति–पत्नी एक–दूसरे का नाम नहीं लेते। बनजारों की पारिवारिक व्यवस्था इस तरह की है।

बनजारों का टाँडा जहाँ रूकता था उस जगह की पूजा की जाती है। बकरे की बली देकर पूजा करते हैं। जिसे 'समनकपूजा' कहते हैं। ऐसी पूजा टाँडे के प्रस्थान के समय भी की जाती है। बनजारों के रहन–सहन, खान–पान, नाते–रिश्ते में राजस्थान की झलक दिखाई देती है। वे दुनिया में जहाँ कहीं भी गए अपनी स्वतंत्र सांस्कृतिक पहचान कायम रखी है।

जीवन पद्धति

बनजारों का मूल व्यवसाय लहेणी है। बैलों की पीठ पर नमक, गेहूँ आदि एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने का काम करते हैं। मुगल और मराठा शासनकाल में बंजारों को इसी कारण प्रतिष्ठा प्राप्त थी।

पशुपालन बंजारों की आजीविका का साधन रहा है। इसीलिए गाय–बैलों का समूह उनके पास होता था। वे दूध नहीं बेचते थे, किन्तु घी अवश्य बेचते थे। जूट अंबाडी से धागा तैयार कर बोरी बनाने का या उसका कपडा बनाने काम भी करते थें गोंद, शहद जमा करना, शराब बनाना, मुर्गीपालन, मजदूरी, खेती आदि व्यवसाय से उनका जीवन यापन होता।

बंजारों को शिकार का बड़ा शौक रहा है। टाँडे के प्रत्येक घर में कम–से कम एक शिकारी कुत्ता होता है। शिकार के पीछे कुते लगाना, भाला, बरछी, लाठी लेकर, शिकार करना उनका प्रमुख कार्य है। सूअर के शिकार को वे सूरमा माटी कहते हैं। शिकार करने वाले

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सभी लोगों को मांस का समान हिस्सा दिया जाता है।

आतिथ्य

बनजारा जाति में अतिथि का विशेष सम्मान किया जाता हैं अतिथि को 'पामणों' या 'पामकोट' कहा जाता है। अतिथि के आने पर पहले उसके पैर धोते हैं। इस सम्बन्ध में डॉ. जाधव का कथन है

''मेहमान घर के आँगन में चप्पल उतारकर मेजबानों को राम–राम करता है। आसन ग्रहण करते ही स्त्रियाँ पानी का लोटा अतिथि के सामने रखती है जिसे 'कछसेर लोटा' कहते हैं। मेहमान कुलला करके लोटे को जमीन पर रख देता है। वह पानी नहीं पीता है। इसके बाद अतिथि मेजबान से कुशलक्षेम पूछता है। जिसे 'कसछाल' कहते हैं इसके बाद उसे पानी पीने की अनुमति मिलती है। काँसे की थाली में मेहमान को जिमाना प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जाता है।[13]

संस्कार

बंजारा जाति में संस्कारों का अत्यधिक महत्व है। इन संस्कारों को वे अत्यधिक उल्लास और हर्ष के साथ मनाते हैं। विशेषतः विवाह संस्कार में बंजारा स्त्रियाँ डफ की ताल पर उत्साह से नृत्य करती है। इससे सारा वातावरण हर्षित हो जाता है। इस नृत्यगान में सम्मिलित होने के लिए अन्य स्त्रियों के पैर भी थिरकने लगते है। बंजारा जन–जीवन पारम्परिक संस्कारों से जुड़ा हुआ है। जिसके हर संस्कार की विधियों में लोकगीत बिखरे पड़े हैं। हर समाज में संस्कारों को महत्व दिया जाता है। जो व्यक्ति संस्कारहीन है उन्हें समाज में कोई महत्व नहीं देता है। इस जाति में हर संस्कार को रूढ़ि परम्परा के अनुसार महत्व दिया गया है। अतः आदिम जनजातियाँ अपने संस्कार विशेष की ओर अधिक महत्व देती है।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संस्कार के सम्बन्ध मैं डॉ. यशवंत जाधव का कथन है–

''बंजारा जाति में जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त संस्कार सम्पन्न होते है। संस्कारों के अवसर पर वेदमंत्र नहीं पढ़े जाते। शास्त्रों में सभी जातियों के संस्कारों के साथ वैदिक मंत्रों का विधान नहीं है। जातकर्म से लेकर चूडाकर्म तक के संस्कारों के कृत्य, ब्रिज जातियों के पूरुष वर्ग में वैदिक मंत्रों के साथ सम्पन्न किए जाते हैं। किन्तु अन्य वर्गों में बिना वैदिक मंत्रों के ही ये सम्पन्न होते हैं।''[14]

बंजारा जाति में संस्कार शास्त्र के आधार पर सम्पन्न नहीं होते। क्योंकि बंजारा समाज आदिम रहने के कारण उन्हें शास्त्र क्या है? वेदमंत्र क्या है? इस सम्बन्ध में किसी प्रकार का ज्ञान नहीं है। बंजारे परम्परा के अनुसार संस्कार की प्रक्रिया करते आ रहे हैं, चाहे वह जन्म संस्कार, विवाह संस्कार, या मृत्यु संस्कार ही कयों ने हो? बंजारा समाज प्राचीन काल से अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखे हुए हैं। इस सम्बन्ध में बापूराव देसाई का कथन है–

''ये संस्कार मानव जीवन में पथ–प्रदर्शन का कार्य करते हैं। संस्कारों के कारण अपने जीवन में नियमितता और व्यवस्था आती है। जन्म, विवाह, तथा मृत्यु के आस–पास मानव समूह विश्वासों, रीति रिवाजों और व्यवहारों का ऐसा जटिल ताना–बाना बुन लेता है कि उनके वास्तविक स्वरूप को समझे बिना अहिराणी संस्कृति का पूर्ण चित्र प्राप्त नहीं हो सकता। इसमें बच्चों के नामकरण की स्थिति भी महत्वपूर्ण होती है।''[15]

वैदिक साहित्य के अनुसार मानव जीवन में सोलह संस्कारों का वर्णन मिलता है जो जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त सम्पन्न होते हैं। किन्तु बंजारा जाति इन वेदमंत्रों से अनभिज्ञ है क्योंकि यह घुमन्तु जाति अनपढ़ रहने के कारण शास्त्रों से दूर रही है। इस जाति में प्रमुखता से तीन संस्कारा सम्पंन्न होते हैं–जन्म संस्कार, विवाह

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संस्कार, मृत्यु संस्कार इनमें दो संस्कार लोगों को आनन्द देते हैं और एक संस्कार अशुभ माना जाता है।

त्यौहारः बंजारा समाज की धरोहर

दक्षिण भारत के बंजारों में अपने समाज के प्रति एक लगन होने के कारण वे अपनी संस्कृति, धर्म, त्यौहार रहन–सहन इनके प्रति काफी सजग का परिचय देते है। इनका अधिक से अधिक समय दक्षिण में बीत चुका है। राजस्थान वे बहुत पहले छोड़ करके यहाँ बस गये थे। कम–से–कम दो सौ सालों. से उनका संपर्क अपने मूल–निवास तथा वहाँ के निवासियों से नहीं है, फिर भी वे अपने पूर्वजों पर्वों और त्योहारों को बड़े उत्साह से मनाते हैं।

बंजारा जनमानस में त्यौहार एवं सामाजिक सरोकार के साथ–साथ. पारिवारिक गराई का पता चलता है। घुमन्तु लोग भी सुसंस्कृत होते हैं। अनपढ़ होकर भी घर–परिवार के साथ इनका समर्पण औरों के लिए निश्चित तौर पर सोचनीय होता है। चैती पूर्णिमा से लेकर अक्षय–तृतीया तक झूले खेले जाते हैं। पर आजकल नाग पंचमी के दिन झूला जाता है। अपने घर के सामने हो या टांड़े के भीतर कहीं पेड़ पर बँधे हुए झूलों पर टांडे में पीहर के लिए आई हुई युवतियों को किसी भी प्रकार का बंधन नहीं होता है। उन्हें झूला झूलने में कोई दिक्कत नहीं आती। क्योंकि उनकी ओर देखने का टांडा वासियों का अंदाज सम्माननीय ही होता है।

होली

यह बंजारों का मुख्य त्यौहार है। नाच गाना, मौज, मस्ती और रंगों से भरा त्यौहार होली है। महुए की शराब, बसन्त ऋतु का आगमन, डफ चेग की आवाजें टाँडे में एक–दो महिने पहले ही गूँजने लगती है–

धूम मची धूमें, मची र बणजारा।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हो कीय धूम मचीर बणजारा।

अब भलो झोक घणोर बणजारा।

रेनिया म घूमे मचीर बणजारा।

धूंड की होली खेलने वाले बनजारों को गेरीया तथा स्त्रियों को गेरणी कहा जाता है। लोगों की टोली नाईक के घर आती है, जिसे 'गेरिया आवगे' कहते हैं। टांडे के नाईक को वे आशीर्वाद देते है जिसे 'वाजना देणों' कहा जाता है। यथा–

आडा न धडाती गेरिया उतरे, आये नायकेरे दरबार,

अंग उभेछां उभेछा पण ठाड़े छां

द हो नायक रूपिया पीचीस, लगेरी चारी आशीष

अंगण उभे छां..... ।''

होली दहन में स्त्रियाँ शामिल नहीं होती।

गीत और नृत्य

बंजारा एक घुमंतु जाति है। टांडे के साथ खुशी, आनन्द, उल्लास के पल बहुत थोडे आते हैं। होली स्त्री–पुरुषों के आनन्द, उमंग और उल्लास का त्यौहार है। प्रेम का त्यौहार होने से स्त्री–पुरुष दोनों गीत और नृत्य से आमोद करते हैं।

होली गीतों को स्त्री–पुरुष नाचते हुए गाते है। इनके तीन प्रकार है–

1. बैठकर गाए जाने वाले
2. खड़े रहकर गाए जाने वाले
3. नाचते हुए संगीत के साथ गाए जाने वाले गीत

होली के अवसर पर गाए जाने वाले गीतों को 'लेंगी हैं। खड़ी लेंगी और बैठी लेंगी, दो प्रकार के गीत हैं। लेंगी गाते समय गायक दो टोलियों में बैठ जाते हैं। पहली पंक्ति गाने के बाद दूसरा समूह उसे दूहराता है। यह क्रम बदलता रहता है। एक बार गाई जाने वाली

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लेंगी पूरे उत्सव में दूसरी बार नहीं गाई जाती।

पाई नामक नृत्य बंजारों में खास है। गेरयिा घेरा बनाकर खड़े होते हैं और ताल से पाँव थिरकाते हैं। इसी प्रकार तलवार नृत्य, काठ नृत्य, टिपरी नृत्य भी किया जाता है।

संदर्भ–

1. डॉ. केशव फालके–बंजारा लोकसाहित्य पृ. 17
2. श्रीराम शर्मा–बंजारा समाज, पृ. 86
3. श्रीराम शर्मा–वही, पृ. 86
4. बरार सेंसस रिपोर्ट (1981 ई.), पृ. 150
5. ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स ऑफ बाम्बे (भाग–2),पृ. 331
6. दि मैसूर ट्राइब एण्ड कास्ट्स (भाग–2), पृ. 135
7. 'बंजारा' आदिम जाति शोध संस्थान, उदयपुर, पृ. 27
8. डॉ. केशव फालके – बंजारा लोक्र साहित्य, पृ. 23
9. डॉ. गोविन्द त्रिगुणामत – शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, पृ181
10. डॉ. सुरेश गौतम/डॉ. वीणा गौतम–भारतीय लोकसाहित्य कोश, पृ. 2692
11. ––– वही ––– पृ. 2693
12. डॉ. शैलजा माहेश्वरी–बंजारा (भारतीय लोक साहित्य कोश, खण्ड–6), पृ. 2693
13. डॉ. वीना गौतम–भारतीय लोक साहित्य कोश, पृ. 2697
14. डॉ. यशवंत नाघव–बंजारा जाति : समाज और संस्कृति, पृ. 19
15. बापूराव देसाई– बंजारा लोक साहित्य, पृ. 85

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आदिवासी गरासिया साहित्य के गीत

हरदीप सिंह

भारत में 19% भू–भाग पर आदिवासी बसते हैं, समस्त जनसंख्या का 8 प्रतिशत आदिवासी हैं, जो शिक्षा और सभ्यता से कटे हुए हैं। 1991 की जनगणना के अनुसार 6.78 करोड़ आदिवासी भारत में रह रहे हैं। इनमें से 12.44 प्रतिशत राजस्थान के हैं जिनकी अपनी भाषा, सभ्यता, संस्कृति एवं लोक वांगमय है।[1]

गरासिया जाति का प्राचीन इतिहास और उत्पत्ति का विस्तार से विवरण नहीं मिलता। दंत कथाओं के अनुसार 'गरासिया' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के गृह + ऋषि = गृहर्षि शब्द से हुई बताते हैं। जिसका अपभ्रंष आज ग्रासिया, गरासिया, गराइया आदि बने। ऋषि वनों और पर्वतों पर तपस्या करते थे तो इनकी सेवा और रक्षा के लिए क्षत्रिय लोग जंगल में गृह बना कर रहते थे जिनको 'गृहऋषि' कहते थे। उन्हीं की संतान 'गरासिया' कहलाई। कर्नल टाड के मतानुसार गरासिया शब्द 'गवास' से बना। ये राजपूतों से ही निकले पर उनसे नीचे गिर गए, अतः गिरासिया कहलाए। यह लागे एक ग्रास (भोग)

(हरदीप सिंह, परा–स्नातक हिन्दी विभाग, सतीशचंद्र धवन सरकारी कॉलेज, लुधियाना, मो. 09417717910, ईमेल bkhardeep@yahoo.comcom)

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के अधिकारी बने इसलिय भी 'ग्रासिया' कहलाए। गुजरात में 'भूस्वामियों' को आज भी गरासदार या गरासिया कहते हैं। कुछ लोग यह भी मानते हैं कि गरासियों को 'गिरिवासी' (पर्वतवासी) होने से भी इन्हें गिरासिया कहा गया। यह पर्वत और वनाँचल के पूर्ण जानकार होते है।[2]

गरासिया गीतों की एक बड़ी संख्या कथात्मक गीतों की है। अर्थात उसमें किसी न किसी रूप में घटनाओं का क्रम मिलता है। इसके भी भेद होंगे– वे कथात्मक गीत जो बहुत छोटी घटनाओं पर केंद्रित हैं उसमें विशिष्ट स्थान और विशिष्ट पात्रों के नाम नहीं होंगे। लेकिन ये एक कविता (या लिरिक) भी नहीं कहे जा सकते। पंक्तियों के संयोजन में कथा तत्व का क्रमिक विकास दिखाई देगा। ऐसे कथात्मक अंश वाले गीतों को 'बैलेड' की श्रेणी में रखना पड़ेगा। इससे भी बड़ी गाथाएं होगी जिन्हें प्रबंध काव्य (महाकाव्य या ऐपिक) की श्रेणी में रखना पड़ेगा।[3]

इनके लोक गीतों में गरासियों के रीति रिवाज, परम्पराएँ, मूल्य, इतिहास और प्राचीन विरासत उपलब्ध है। गरासियों के सामाजिक मूल्य और महत्व में इनसे प्रगति हुई है। इससे इनके आध्यात्मिक और प्राकृतिक विश्वास का पता चलता है। गरासिये अपने विशेष चरित्र एवं व्यक्तित्व की निराली एवं अलग पहचान रखते हैं। एक व्यवस्थित जीवन पद्धति की 'गोपनीयता' रखते हैं।[5]

गरासिया गीतों के अनेक विषय हैं जिनमें प्रेम, शादी–ब्याह, तयौहार, मेले, देवी–देवताओं के प्रति आस्था, भारध (युद्ध) राम–कथा, माँ अम्बा आदि।

इनका उल्लेख निम्नलिखित ढंग से किया जा सकता है।

प्रेम गीत : पार्वती भीलानी का रूप बनाकर और शिवजी मोची का रूप बनाकर एक दूसरे की परीक्षा लेते हैं। पार्वती कहती है, 'हे शिव

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भोले! मेरे से प्रेम मत लगाओ यह मँहगा पड़ेगा। नौ लाख तारे हैं पर चाँद एक है।'' शिव जी बोले, 'अपनी जटाओं के जाल में छिपा लूँगा किसी को पता नहीं लग पाएगा।'

भीलनी भिखारिन कहती है, 'यह प्रेम मँहगा पड़ेगा। शिवजी आप त्रिलोकीनाथ हैं, हे भोलेनाथ्! आप कहाँ मुझसे प्रेम करने लगे। मैं कहाँ, आप कहाँ? आपके घर में पार्वती और गंगा दो–दो हैं फिर मेरी क्या आवश्यकता है ?

'तू चल तो सही गंगा और गौरी को मायके भेज दूँगा और तुम्हें पटरानी बनाकर रखूँगा।'

सिंह और बैल की सवारी करती हूँ, परन्तु आप मोची बन कर छलने आ गए, अब मैं आपकी कला समझ गई हूँ।[6]

प्रेम के नशे में प्रेमिका को प्रेमी के सिवा कुछ दिखाई नहीं देता, उसकी स्मृति में वह धाराप्रवाह रोती है, बकरियाँ चराना भूल जाती है, वह सखी से कहती है कि हे सखि, प्रेम करके मैने भूल की है।[7]

'लोही पीवा बैठो (खून पी रहा है) गीत में प्रेमिका अपने प्रेमी की शिकायत अपने पिता से करती हुई कहती है कि वह जहाँ भी जाती है उसका प्रेमी उसके पीछे वहीं पहुँच जाता है। चाहे वह पानी लेने जाती है, चाहे बकरी, भैंस या गाय चराने जाती है, चाहे पर्वत में या वन में जाती है, वह उसके पीछे पीछे चला आता है। बाज़ार में उसके पीछे प्रेमी के पहुँच जाने से संकोच वश वह अपनी कमीज़ और ब्लाउज़ भी नहीं खरीद पाई। यहाँ तक कि जब वह चक्की पीसती है तो वह भी साथ पिसवाने बैठ जाता है। खाट पर सोती है तो चुपके से आके साथ सो जाता है। इसलिए हे पिता जी, मैं तो बुरी तरह तंग आ गई ऐसे प्रेमी से, यह तो जैसे मेरा खून पी रहा है।[8]

शादी–ब्याह पर गाए जाने वाले गीत

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गरासी भाषा के ऐसे गीत भी हैं जिन्हें शादी–ब्याह की रस्मों के दौरान गाया जाता है।

शादी पक्की हो जाने पर वर–वधु दोनों के माँ–बाप आरती उतारते हैं तब अंदर जाते है। फिर वधु को गर्म पानी से स्नान कराते हुए यह गीत गाते हैं।

''हमारा प्यारा वर राजा तो पवित्र गंगा जल में

गोबर घोल कर स्नान कर रहा है....

दुल्हन के पीठी करने तथा तेल चढ़ाने के समय महिलाएँ गाती हैं–

'दुल्हन पीठी करवाने को खड़ी है, वह मस्त मस्त लग रही है।'

रात को वर को खाट पर बिठाकर औरतें खाट को सिर पर उठाकर मोरीया नाच नाचती हुई गाती हैं– 'हे हरे मोर (दुल्हा)! तू दिल खोलकर खूब खेल, तेरे घुंघरू बज रहे हैं।'

जब दुल्हा राजा शादी के उत्साह में जल्दी जल्दी कदम बढ़ाता है तो सभी बाराती पीछे छूट जाते हैं तब साथी कहते हैं ''वर राजा! इतने उतावले मत चलो, देखो संकीर्ण पर्वतीय घाटी में ज़रा रुकना तुम्हारी माता पीछे रह गई है, तुम्हारी चाची पीछे पैदल आ रही है और बूआ भी पीछे छूट गई है ज़रा ठहरो।'' दुल्हा कहता है कि 'मैं तो कुँवारी कन्या के साथ ही लग्न करूँगा, पहले ही से शादी शुदा के साथ नहीं, वरना अखंड ब्रह्मचारी ही रहूँगा।'

तब उसे बताया जाता है कि बन्या कुँवारी ही है। गीतों में बताया गया है कि 'हल्दी' बहुत महँगी हो गई। पर महँगी सस्ती जो भी है, शादी के लिए तो खरीदनी ही पड़ेगी। महँगाई से डरोगे तो लड़का कुँवारा ही रह जाएगा।'

गरासियों में मोर को दुलहे का पर्याय माना जाता है अतः

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शादी में लोलो मोरिया[10] खूब मया जाता है। 'मोरीयौ' गीत में बताया गया है कि मोर बादलों का भांजा है और आज देवताओं का युग है इसलिए तुम इन्द्र के साथ मैच खेल कर अपना नाम चमका लो। बारह बादल भाई खिलाड़ी के रूप में सामने की टीम में हैं देखते हैं किसकी हार होगी और किसकी जीत। मोर का पाँव चोटिल है इसलिए टेढ़ा होने के कारण वह बादलों के समान तेज़ नहीं दौड़ सकता। उस पर बारह गोल चढ़ जाते हैं। मोर कालिका देवी से सहायता के लिए मनौती मनाता है। उनकी कृपा से वह बारह गोल उतार कर चौबीस गोल चढ़ा देता है। म्यूर तो प्रसन्न हो जाता है पर बादल भागकर इंद्र को समाचार सुनाते हैं कि वे उसके भान्जे से हार गए हैं। इस पर इन्द्र बारह वर्ष तक भयंकर अकाल की घोषणा कर देता है। वर्षा की एक भी बूँद नहीं पड़ी। तब मोर पुनः कालिका देवी की शरण में जाता है। देवी प्रसन्न होती है और शीघ्र वर्षा होती है जिससे प्रकृति हरी भरी हो जाती है।

इस मोर के बहाने ही एक गीत में आबू पर्वत की महिमा इस तरह गाई गई है।

हे मोर! तुझे आबू पर्वत पर शीतल जल पीने को उपलब्ध है फिर भी तू क्यों रोता है, क्यों चिल्लाता है? आबू पर्वत पर वृक्षों की ठंडी छाया है, शीतल जल के कूएं भरे पड़े हैं, नक्की झील भी है। वहाँ राजा–महाराजाओं के भव्य महल हैं, देवता तक निवास करते हैं फिर भी तू क्यों रो रहा है, उदास क्यों है? हे सुन्दर पक्षी, वहाँ शीतल जल–पान से हृदय में ठंडक पहुँचती है अतः तू पी और मस्त रह।[11]

'गणगौर' गीत में गरासिया स्त्रियां पार्वती से प्रेमभरा आग्रह करती हैं कि शिवजी रात्रि को वहीं विश्राम करें। इसके लिए वे विविध प्रलोभन देती हैं कि नाक की नथ कानों के झुमके, ललाट का टीका और बिंदी आदि लाकर देने को कहती हैं कि किसी प्रकार रुक जाओ

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परन्तु गणगौर (पार्वती) ठहर न सकने की मजबूरी बताती है।[12]

त्योहारों – मेलों से सम्बन्धित गीत

इन गीतों में दीवाली और होली के त्योहार और आदिवासियों के मेलों का भी चित्रण है।

दीवाली पर लिखा गीत दर्दनाक है जिसमें भाई अपनी बहन को दीवाली पर ससुराल से लेने जाता है परन्तु बहनोई ने बहिन की हत्या कर दी है। इससे यह पता चलता है कि दीवाली पर गरासिया जाति में विवाहित लड़की को मायके लाने की रसम भी है।

वहीं 'होली रा गीत' होली के अवसर गरासिया महिलाएँ गाती हैं– देखो, आ गई चाँदनी रात। यह कितनी सुंदर है। आओ धोरी पर खेलने चलें। हे मेरे भाई उनको निमंत्रण देकर आओ। होली आ गई है।[13]

गरासियों के मेले में जाने का उत्साह उनकी गरीबी के दुःख को भी ढंक लेता है। जहाँ धनजी नाम का युवक मेले में जाने को तैया है वहाँ युवतियां भी मेले में जाने के लिए अपनी भाभी की चमकदार चुंदड़ी (ब्लाऊज़) और घाघरा पहनती हैं। अन्य श्रृंगार के लिए सोनी की दुकान से पाँव की पायल, मोची की दुकान से जूतियां, बनिए की हाट से पड़ला, बजाज की दुकान से टीका, लक्षकार की दुकान से चूड़ा खरीदा और फिर पंडित जी से लग्न निकलवा कर घर लाए। धनजी नामक चुवक भी कमर में कटार, हाथ में तलवार और डाँडिया रखता है। इसलिए प्रभात के पीले प्रकाश में सभी जल्दी जल्दी मेले में पहुँचना चाहते हैं।

इस गीत में गरासियों के मेले–त्योहारों के समय पहनने वाले पहनावे और पोशाकों का उल्लेख हुआ है। यह गीत अंत में पार्वती के साथ गरासी महिलाओं के संवाद के साथ समाप्त होता है।[14]

आर्थिक स्थिाति दर्शाने वाले गीत

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'पइसा ओछा 'परिया'[15] गीत में प्रेम–श्रृंगार और गरीबी दोनों का वर्णन है। गरीबी के कारण प्रियतमा अपने प्रिय से अपने मन की छोटी–छोटी इच्छाएँ मन में ही रह जाने का उल्लेख करती है। आबू रोड घूमने जने, बाज़ार से झूलकी (कमीज़) लाने, रणकपुर के मंदिर में जाने की इच्छा वह पैसे न होने की वजह से पूरी न कर पाई। वह वहां जाकर गोली, नमकीन, और कुल्फी खाना चाहती है। बालों के लिए क्लिप और लाल मौजे खरीदने की अभिलाषा भी उसकी अतृप्त रह जाती है। बस में बैठने का शौक भी पूरा नहीं कर पाती इसलिए पैदल ही चलना पड़ता है।

गरासियों की निर्धनता की रेखा इतना नीचे है कि छोटी–छोटी ख्वाहिशें भी दुर्लभ हो जाती हैं। इन गीतों के माध्यम से गरासियों के आर्थिक स्तर का भी पता चलता है। इसका कारण अगले गीत 'मजूरी रा गीत' में स्पष्ट होता है। राज–रजवाड़ों के समय किसान–मज़दूरों से बेगार लेना एक आम बात थी। ऊपर से सिपाहिओं की गाली–गलौच एवं मारपीट। गरासियों ने इस गीत में तत्कालीन सामंती व्यवस्था के प्रति अपना आक्रोश व्यंग्य में प्रकट किया है।[16]

प्राकृतिक आपदा और अकाल का गीत

'काल रा गीतड़ा'[17] काल, काल नो कोमठी, में 1856 के भयानक और त्रस्त करने वाले अकाल का उल्लेख भी गरासियों ने अपने गीतों में किया है।

लखा लागी जीवा जूण
डूगरा भाखरो रो सारो खूटो
नदी रौ नीर आंटो
नरो साडी नारी
नारियो साडीया बाल

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कोठियो खूटो धांन
जाव लागो खो बीजो
ओट धून गालू
हपनिया उछरियौ
होम व्हू होडू है
खाई मा है डोंग है
होडो वाली घरती साखा
लोगो मा पाडो टगरो साखा लोगो

आर्थात जीवों का जीना हराम हो गया। कष्ट की पराकाष्ठा हो गई। पहाड़ों और जंगलों का घास (चारा) समाप्त हो गया। नदियों का जल सूख गया। पुरुषों ने अपनी नारियों को, नारियों ने अपने को छोड़ दिया। कोठों का धान समाप्त हो गया जैसे जीवों का बीज ही नष्ट हो जाएगा। ऐसा प्रतीत होता है यहाँ सबका नाश हो रहा है, ऐसा यह छपपन का अकाल है।

तीन गीतों[18] में अंग्रेज़ों द्वारा होशियारी से सिरोही के राजा से आबू पर्वत पर अधिकार जमा लेने का उल्लेख हुआ है। इससे सिद्ध होता है कि गरासिया गीतों में ऐतिहासिकता भी है। ये गीत हैं – मू मार जाणती नहूँ, भूरीयुं, भूरीयौ फेरोंगी, भूरीयौ। भूरीयौ गीत में यह बताया है कि सिरोही के महाराजा अंग्रेज़ों से कहते हैं कि आबू पर्वत आपको कैसे दे दूँ? वह तो आधा देवी–देवताओं और आधा ऋषि–मुनियों का है, वे वहाँ तपस्या करते हैं। अंग्रेज़ वहाँ हवाबंगला बनाना चाहता है इसलिए होशियारी से कहता है कि अधिक नहीं तो भैसे की खाल जितनी ही भूमि दे दो, इतने में ही मैं छोटा सा बंगला बाँध लूँगा। तब सिरोही के महाराज ने स्वीकार कर लिया। अंग्रेज़ ने कागज़ पर लिखा पढ़ी करके शर्तें लिखवा दीं ताकि, बदल नहीं सके। इस प्रकार पक्का काम कर लिया। एक भैंसा मार कर उसका

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चमड़ा काटकर बारीक चर्म धागे निकलवाए, ये रेशम के समान कोमल पतले धागे थे। फिर सिरोही के महाराज को बुलाया। यह डोर आबू पर्वत के चारों और डाल दी और पूरा आबू पर्वत नाप लिया। फिर भी थोडा धागा बचा उससे पास की पहाड़ी टोडामगरी (जालौर) नापी गई सिरोही वाले महाराज वादा कर चुके थे। लिखकर दे चुके थे अतः मना नहीं कर सके और अँग्रेज़ ने बड़ी चालाकी, धूर्तता और कलाकारी से आबू पर्वत ले लिया।

इन गीतों में अँग्रेज़ों द्वारा किए गए विकास कार्य को लेकर 'वाह–वाह' भी की गई हैं अँग्रेज़ों ने नए नए नगरों को पटरियों से जोड़ा, नदी–नालों पर पुल बनवाए, स्टेशन बनवाए, स्टेशन पर रेलगाड़ियां रोकने व रवाना करने के लिए सिगनल, झंडियां, लाईटें आदि बनवाए, तार और फोन का प्रबन्ध किया। अँग्रेज़ों ने रेल, मोटर और वायुयान चला दिए इसलिए उनके हर कार्य की 'वाह–वाह' करके श्लाधा की गई है।

नवा नगर री सड़का माथै चले रेलगाड़ी
हड़का हालो मोटर गाड़ी आकासे हवागाड़ी
वाह रे भूरया वाह वाह, वाह रे फेरोंगी वाह वाह

ऐतिहासिक और पौराणिक कथाओं पर आधारित गीत

गरासिया साहित्य में ऐतिहासिक और पौराणिक कथाओं पर आधारित गीत भी मिलते हैं। जैसे राम–रावण पर, महाभारत पर, अम्बा माता पर गीत, रसियों के गीत चौबीस सुमेर पर्वत पर गीत, दो मछलियों के झगड़े से प्रलय, राधा–कृष्ण और गोपी–कृष्ण पर गीत, सृष्टि के प्रारंभ के गीत लम्बे हैं।[19]

अर्जुन सिंह शेखावत के अनुसार ..

''गीतों की राग–रागिनी में अधिक आरोह–अवरोह भी नहीं होता। ऋचाओं की ऋचवाओं की भाँति मंद–मंथर गति से धीरे आवाज

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में गाते हैं अथवा सामगान की तरह गाते हैं। अधिकांश गीत नृत्य के साथ गाए जाते हैं। स्त्री–पुरुष कई गीतों में प्रशनेत्तर से संवाद भी करते हैं। (एक–एक पंक्ति बारी–बारी गाकर)

इनके गीतों में न तो भाषा का चमत्कार है न प्रस्तुति की पूर्व तैयारी दिखाई देती है। एक ही कंठ में समूचा समाज मुखरित होता है। इनके गीतों में सीधे–सादे शब्द, नगव्य स्वर, सरल एवं सीधी लय, विशेष आरोह–अवरोह भी नहीं मिलता। मानो सहज बोल चाल को गीत का जामा पहना दिया हो। नृत्य भी इसी प्रकार मानो सहज चाल को ही लयबद्ध कर दिया हो। एक भाव अद्यत विचार से गीत निकलता है और ज्यों ज्यों दृष्टिगत होता है और मस्तिष्क सोचता जाता है, त्यों त्यों गीत की पंक्तियां खुलती जाती हैं। अधिक वाद्य भी नहीं रखते और शांति से आनंद में लीन हो जाते हैं।''[20]

वे आगे लिखते हैं।

''गरासियों के लोक गीतों में इनकी कला और अनुभूति दोनो होती है। भावनाओं के प्रबल वेग में अंतःकरण (हृदय) में दबी हुई पीड़ा पिघल कर फूट पड़ती है और गीत का जन्म हो जाता है। यही कारण है कि इनके गीत संगीत में कहीं कोयलों की कूहू–कूहू की ध्वनि सुनाई देती है, कहीं मोर की गहरी कूक सुनते हैं, कहीं नदी, नालों और झरनों की कलकल ध्वनि सुनाई देती है तो कहीं सावन की वर्षा भीगोकर हमें सराबोर कर देती है, कहीं प्रचण्ड मार्न्तण्ड की भीष्ण उष्मा महसूस होती है। जीवन की शुष्कता और कठोरता को भुलाने के लिए प्रेम इनके जीवन का आधार है। गीतों में लौकिक प्रेम की धाराएं बहती दृष्टिगत होती हैं। कहीं प्रेमिका अपने प्रिय की प्रतीक्षा करती नज़र आती है, तो कहीं अभिसार का निमंत्रण मिलता है, तो कहीं प्रेमलीला के परमसुख की मधुर–स्मृति में आकुल व्याकुल है। यह सब बाते प्रतीक रूप में भी गूँथी गई हैं और खुले नग्न श्रृंगार में भी है।''

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निष्कार्ष

गरासिया आदिवासी साहित्य के गीतों के उपर्युक्त संक्षिप्त अवलोकन के पश्चात यह सपष्ट हो जाता है कि गरासिया जन–जाति के साहित्य में शोध की नवीन संभावनाएँ उपस्थित है। इन गीतों के माध्यम से गरासिया जाति के जीवन, उनकी संस्कृति को समझा जा सकता है और उन्हें ज्ञान–विज्ञान की बहुत ही तीव्र हो चुकी गति के साथ जोड़कर श्रेष्ठ मानव–संसाधनों का विकास किया जा सकता है। इन गीतों का अध्ययन ऐतिहासिक, पौराणिक दृष्टि से तो किया ही जा सकता है संगीत और भाषा–वैज्ञानिक उपकरणों के आधर पर भी शोध कार्य संभव है। इन गरासिया गीतों से यह भी सिद्ध हो जाता है कि भारत में रहने वाले आदिवासी भी अपनी अस्मिता और पहचान को अपने गीतों और कथाओं में सुरक्षित रखने में कामयाब रहे हैं। बेशक इसके लिए पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक परम्परा में यह आने वाली पीढ़ीओं को दिया जाता रहा है।

संदर्भ

1. शेखावत, सिंह, अर्जुन (2005), भूले वहीं से गिनो, (सं.) शोखवत, सिहं, अर्जुन, भाखर रा भौमियाः आदिवासी गरासिया साहित्य, दिल्लीः साहित्य अकादमी, पृष्ठ XXXIV
2. पूर्वोक्त, पृ. XXXVI
3. कोठारी, कोमल, भूमिका, (सं) शोखवत सिंह, अर्जुन, भाखर रा भौंमियाः आदिवासी गरासिया साहित्य, दिल्लीः साहित्य अकादमी 2005
4. पूर्वोक्त
5. शेखावत सिंह, अर्जन (2005), भूले वहीं से गिनो, (सं) शेखावत सिंह, अर्जुन, भाखर रा भौमियाः आदिवासी

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गरासिया साहित्य, दिल्ली: साहित्य अकादमी, XXXV

6. (सं) शेखावत सिंह, अर्जुन (2005) भाखर रा भोमिया: आदिवासी गरासिया साहित्य: दिल्ली: साहित्य अकादमी, पृ. 25
7. वहीं. पृ. 26
8. वही. पृ. 26
9. वही. पृ. 27–32
10. वही. पृ. 33–37
11. वही. पृ 39
12. वही. पृ 41
13. वही. पृ 42
14. वही. पृ. 43–44
15. वही. पृ. 46
16. वही. पृ. 47
17. वही. पृ 49
18. वही. पृ. 59–64
19. शेखावत सिंह, अर्जुन, गरासियों के गीत, (सं) शोखावत सिह, अर्जुन: भाखर रा भौमिया: आदिवासी गरासिया साहित्य, दिल्ली: साहित्य अकादमी, 2005 पृ. 20
20. वही. पृ. 20

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्वतंत्रोत्तर कश्मीर नाटक

रूबी जुत्शी

कश्मीरी नाटक कश्मीरी कविता के भांति प्राचीन है। कल्हण की 'राजतरंगिणी' के अनुसार कश्मीर में नाटक ईसा पश्च दूसरी शताब्दी में ही प्ररम्भ हुआ है। नाटक की यात्रा कभी राज्य के सहयोग से कभी तेज़ी से चली तो कभी अनुचित वातावरण के कारण मन्दगति से चलती रही। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बीसवी शताब्दी के आरम्भ में पारसी थेटर एवं हिन्दु पौराणिक कथाओं पा आधारित नाटकों से कश्मीरी नाटक पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा। परन्तु कश्मीर में नाटक स्वतंत्रा के पश्चात् ही अपने आपको थिएटर का रूप दे सका। श्रीनगर में ट्रेगोर हॉल का निर्माण तथा जम्मू कश्मीर आर्ट अकादमी ऑफ आर्ट कल्चर एण्ड लग्वैजस की स्थापना – नाटक की उन्नति में दो महत्त्वपूर्ण मील चिह्न हैं। ट्रेगोर हाल के खुलने से घाटी में प्रसीनियम (Proscenium) थिएटर का आरम्भ हुआ।

मंच, आधुनिक विद्युत प्रणाली (Lighting System) श्रृंगार कक्ष (Makeup room) वेशभूषा कक्ष (Change room) घाटी कें थ्रेटर प्रेमियों के लिए एक अच्छे स्पप्न के साकार होने के बराबर था क्योंकि रंगमंच

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से जुडे सारे लोग निम्न मध्यवर्गीय होते थे। यह हाल सांस्कृतिक तथा रंगमंच कार्यों का रंगारंग केन्द्रबिन्दु बन गया। कल्चरल अकेडमी ने वार्षिक नाटक प्रतियोगताऐं आरम्भ की और यह प्रतियोगताऐं वार्षिक कार्यक्रमों का एक महत्वपूर्ण अंग बन गई। सरकार की ओर से किए जाने वाले बड़े–बड़े सांस्कृतिक महात्सवों जैसे 'जश्न कश्मीर' के अकेडमी एक विशेष पर्वक्रिया (Nodal gency) बनी। अकेडमी ने कश्मीर घाटी में विभिन्न स्थानों पर थ्रेटर, नाटक लेखन कार्यशालाऐं तथा नाटकों के मंचन प्रदेश में नाटक के विकास के लिए एक उचित प्रेरक (Catalyst) का काम किया।

घाटी में स्वतंत्रा के पश्चात् नाटक के विकास में भारत सरकार के संगीत और नाटक विभाग (Song and Drama Division) राज्य सरकार के सूचना विभाग की सांस्कृतिक शाखा की भूमिका उल्लेखनीय रही है क्योंकि यह दोनों इकाईयां कश्मीर के दूर दराज़ सीनों पर ऐसे नाटक प्रस्तुत करते थे जो सामाजिक सन्देशों से भरे होते थे। निर्माण के रूप से स्वतंत्रा के बाद का समय नाटक के लिए स्वर्णयुग रहा है। इस युग में कई बडे गाने का कौतक (Opera) होने के अतिरिक्त –बण्डयथ्रर' को राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता मिली। कश्मीरी लेखकों ने रेडियों के लिए कुछ नवीन प्रवृत्तियों पर नाटक एवं धारावाहिक लिखें इनमें से, कुछ रेडियों नाटकों को राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला है उदाहरण के लिए बन्सी पारिमू का 'दअनथ्रर' आदि।

स्वतंत्रा के बाद लिखे गऐ कश्मीरी नाटों को हम चार प्रकाशों में विभाजित कर सकते है

1. लोक शैली में लिखे व्यंग्यपूर्ण नाटक
2. सामाजिक – हास्य – सुखान्त नाटक
3. गाने का कौतक (ओपेरा)

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

4. नए प्रयोग वाले नाटक

उपरोक्त विभाजन से नाटक के मंचन शैली को ध्यान में रखते हुए किया गया हैं मूलतः तो हर एक नाटक सामाजिक या सांस्कृतिक सन्देश देता है।

1. लोक शैली एवं हास्य व्यंग्य:

स्वतंता के पश्चात् एक बड़ी घटना थ्रेटर – क्षेत्र में यह भी कि 'बाण्डपथ्रर' को रंगमंच (Stage) के लिए उपयोगी बनाया गया है। 'बाण्डों' की टोली जिन्हें कश्मीरी में 'बाण्ड जमात' कहते है न सिर्फ दुल्हा या दुल्हन के सामने टोल एवं शहनाई (सुरनई) बजाते बल्कि शादी–ब्याह के अवस पर कश्मीर के गाँवों जहाँ अशिक्षित तथा अविकसित श्रोताओं के समूह 'बाण्ड' लोक शैली में नाटक प्रस्तुत करते थे। 'मंच' के लिए गाँव के लोग रोज़मरा 'Daily routine' जैसी बड़ी ओखली (कश्मीरी कन्ज़) तथा लकड़ी के तख्ते प्रयोग में लाकर 'रंगमंच' बनाया जाता था। यह 'रंगमच' किसी कमरे के दरवाज़े या खिड़की के साथ बनाया जाता था। इस कमरे के खिड़की दरवाज़ों को (Entry wings) प्रवेश के लिए प्रयोग में लाया जाता था तथा इस कमरे को (Change room) वेशभूषा कक्ष (Make up room) श्रृंगार कक्ष के लिए प्रयोग में लाया जाता था। इन नाटकों के विषय–देहज, बालविवाह, भेदभाव, जाति–पाति आदि कभी–कभी कश्मीरी दास्तानें जैसी 'गुलि बकवुल'' सामनाम हीमाल–नग्ररायि, अकनन्दुन और हतिम तय आदि का मंचन भी किया जाता था। इन नाटकों में एक हास्य–चरित्र होता था जो प्रायः व्यंग्य करता और श्रृोतागण बच्चे, बूढे, पुरूष–महिलाऐ आदि होते थे। तालिया बजा–बजा कर इन व्यंग्यो से आनन्दविभोर हो जाते थे। इन नाटकों पर हिन्दी फिल्म संगीत, हिन्दी फिल्मों तथा हिन्दी गानों का भी प्रभाव था। कुछ भी हो कश्मीरी लोक नाटक कश्मीर के गाँव में विकसित हुआ तथा कश्मीर के इतिहास एवं लोगों की यादों का एक हिस्सा बन गया। इन

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नाटकों के संवाद दिहाती भाषा में सम्मलिअ हुए किन्तु कश्मीर में सन् 1989 के बाद अकिन (कुलगाम) से लेकर बुमय (सोपोर) तक इन बाण्ड कलाकारों के बन्दूक की मार झेलनी पडी।

2. सामाजिक–हास्य–सुखान्तः ऐसे नाटक कहे, अनकहे गुप्त शब्द तथा विचार कश्मीरियों तक हास्य शैली के द्वारा पहुँचाते थे। 'मचामा' और 'तिलय छा मरुनुय' के मुख्य पात्र इतने लोक प्रिय हो गए कि वह कश्मीरी भाषा तथा संस्कृति में बस गऐ। इन नाटकों में समाज की समस्याऐं जैसे बेरोज़गारी, रिश्वतखोरी, मानवमूल्य में गिरावट, कश्मीरी संस्कृतिकापतन आदि से ओतप्रोत होते थे। रेड़ियों कश्मीर श्रीनगर ने मार्गदर्शक की भूमिका निभाते हुए इस शैली में कई नाटक का निर्माण किया और यह नाटक समस्त घाटी में बडे शौक से सुने जाते थे। इस शैली में कुछ ऐसे भी नाटक लिखे गए जो सामाजिक थे परन्तु हास्य तत्व इसमें कम था। यह नाटक यथार्थवाही एवं सिटनसला विस्की के 'मैथड एकटर पर' जचते थे। नाटकार ऐसे नाटकों को विकासशील एवं संघर्ष कर रहे मधवर्गो पात्रों की वृष्ठभूमि में लिखते थे। भूषण लाल भूषण का लिखा हुआ 'अवट ऑफ डेट' तथा बंसी निर्दोष का नाटक 'दअनथ्रर' ऐसे ही नाटकों के उदाहरण है।

गाने का कौतक (Opera) जब भी हम कश्मीर में ओपेरा की बात करते है तो एक मुधर ध्वनि 'भ्रमूरो भ्रभूरो' और एक नाम दीनाताथ नादिम हमारे समक्ष चमक उठता है। नादिम ने कश्मीरीयों को बहुत सारे हमारे पास ओपेरा के द्वारा ही आऐ। नादिम के 'ओपोरा' 'भ्रोमभ्रर स्बरज़ल' एवं 'वितस्ता' स्वतंत्रा पूर्व कश्मीर में 'रंगमच' के विकास की दो स्वर्ण उदाहरण है। 'ओपेरा' की एक और सस्वर्ण उदाहरण 'गुलरेज़' है। इसको गुलाम रसूल 'संतोष' ने मकबूल शाह क्रालवारी के इसी नाम की मसनवी से रूपान्तर किया गया है। स्वतंत्रा के पश्चात कम से कम आधा दर्जन 'ओपरा' लिखे

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गऐ और 'प्रतीकात्मक' शैली का इनमें प्रयोग किया गया। प्रमुख चरित्रों का नाम फूलों, पंछीयों, पेड़ों, झीलों तथा नदियों पर रखा गया अधिकांश गोने 'शेफ' शैली में प्रस्तुत किए गए नदिम और संतोष के निधन के उपरान्त ज्यादा 'ओपेरा' जैसे बडे 'प्रोजक्टों' के लिए सहयोग में बहुत कमी आई। 'ओपेरा' के स्वण्र युग में 'हीमाल नग्रराय' 'सफर तअ शहजार' 'शिहिलकुल' और नेकी–बदी जैसे ओपेरा लिखे गये। अधिकांश ओपेरा 1960 के इिर्द–गिर्द लिखे गए। दुर्भागयवश इसके बाद 'ओपोरा' लिखने का कोई गम्भी प्रयास देखने में नहीं आया। नए प्रयोग वाले नाटक :– ऐसी शैली में कश्मीरीयों ने बहुत ही बड़िया नाटक लिखे। 'तलाश छु जअरी' 'हज़ार दास्तान' 'नाटुकं करिव बन्द' 'ब्रटअ तअ बिलडोज़र' 'शिनाखतीकार्ड' जैसे नाटकों से कश्मीरी सोच तथा बुद्धिमत्त के बारे में ज्ञान होता है। यद्यपि इस शैली के बहुत से नाटक उल्लेखनीय है किन्तु 'हज़ार दास्तान' और 'तलाश छु जअरी' ऐसे नाटक है जिनका महत्व कही पर भी है। 'तलाश छु जअरी' की पृष्ठभूमि एक पौराणिक कथा 'जन्में जय' का अपने पिता परिक्षत के सर्व राज तक्षशक के डराने से करने का बदला लेने के यज्ञ का आयोजन करना से लिया गया है यह नाटक सत्य और असत्य न्याय–अन्याय को किसी भी स्थिति को कही पर भी दर्शा सकता है। इस तरह दूरदर्शन के 'स्वर्णकाल' में प्रस्तुत धारावाहिक 'हज़ार दास्तान' कश्मीर में शासकों के कुकर्को तथा कश्मीरियों की साधारणता पर एक कंग्यपूर्ण हास्य नाटक है।

निष्कर्षः कश्मीर में नाटक का विकास सन् 1989 तक निरन्तर हो रहा था। दूरदर्शन और आकाशवाणी नाटककारों का प्रोत्साहन कर रहा था। अकेडमी हर ज़िला मुख्यालय पर वार्षिक नाटक उल्सव कराता था। परन्तु परिस्थितियां के बिगड़ने के कारण कश्मीर में रंगमंच एकदम अविरूद्ध हो गया। सौभाग्य से यह विराम केवल कुछ वर्षों तक ही रहा और सन् 1998 में छोटे पमाने पर नाटक तथा

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सांस्कृतिक कार्यक्रम आरम्भ हुए इसके पश्चात् 'सु यीई''सेमिलबेकट के अग्रज़ी नाटक 'Waiting for Godot' का कश्मीर स्पान्तर, छल शिनाखती कार्ड, बाज़र वुछम तमाशा, मुकजार जैसे नाटकों को मंचन हुआ। सन् 1998 में नाटक की फिरसे शुरू हुई यात्रा ने अब दस वर्षो के उपरान्त गति पकड़नी आरम्भ की हैं।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कबीर की दार्शनिकता

डॉ. मेराज अहमद प्राध्यापक
संस्कृत–विभाग कश्मीर विश्वविद्यालय

प्रत्येक दार्शनिक चिंतन अपने भौगोलिक परिवेश, देश काल परिस्थितिजन्य अपसश्यकताओं की उपज होता है। कबीरदास जी भी इसके अपवाद नहीं हैं। उनकी परिस्थितिजन्य आध्यात्मिक चेतना ने उन्हें दार्शनिक बना दिया। कबीरदास बहुमुखी प्रतिभा वाले, आध्यात्मिक गुरू, समाज सुधारक, हिन्दू–मूस्लिम एकता के प्रतीक, यथार्थवादी कवि हैं। यदि हम कबीरदास को क्रांतिकारी एवं नवीन विचारों से ओत–प्रोत महान् दार्शनिक की संज्ञा से विभूषित करें तो अतिशयोकित नहीं होगी।

कबीरंदास जी मूलतः साधक–विचाराक थे। उनकी दार्शनिक अनुभूति, 'स्वानुभूति' मूलक है। परम्परा से प्राप्त अनेकानेक दार्शनिक प्रत्ययों को आत्मसात् किया है। अद्वैत–वेदांत दर्शन ने इन्हें सर्वाधिक प्रभवित किया है तथापि सांख्य योग एवं बौद्ध दर्शन की छाप उनकी अभिव्यक्ति में झलकती है। 'दर्शन' का विभाजन तत्वमीमांसा एवं ज्ञानमीमांसा के रूप में किया गया है। कबीरदास के तत्वमीमांसा पर बौद्धमत एवं नाथपंथियों का प्रभाव है, वहीं ज्ञानमीमांसा अर्थात् भक्ति एवं ज्ञान सिद्धांत पर विशिष्टाद्वैतवाद का प्रभाव परिलक्षित होता है। स्वयं के 'अनुभौ' से संप्रेषित होने के कारण कबीरदास का दर्शन मात्र

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विघानुराग नहीं है अपितु आध्यात्मिक अनुभूति है। कबीर–दर्शन निजब्रहन की पहचान है। वे सत्यासत्य के निर्धारण में स्वानुभूति को आधार मानते हैं। कभी कभी कबीरदास पर आक्षेप लगाया जाता है कि कबीर का कोई दर्शन नहीं है, यदि है तो केवल धर्म है। लेकिन यह आक्षेप निराधार सिद्ध होता है क्योंकि उनके ग्रंथो के अनुशीलन से सिद्ध होता है कि कबीर का धर्मसाधना उनके तत्वदर्शन की पीठिका पर ही विकसित हुई है। सिद्धांत एवं व्यवहार उनके वाणी में संगुम्फित है। अतः कबीर–दर्शन का तत्व चिंतन उनके ज्ञान एवं साधनात्मक व्यवहार के रूप में प्रतिफलित हुआ है।

परम तत्वः भारतीय दर्शन का प्रधान विवेच्य परमतत्व रहा है। तत्वमीमांसा की प्रथम सीढी परमतत्व को ही माना गया है। कबीरदास ने सगुण निर्गुण हैतु अद्वैत से परे एक परापनर सत्ता की स्वीकृति दी है। कबीरदास उपाधि रहित विशुद्ध चैतन्य 'परमं सत्रा' को अनुभवगम्य मानते हैं कबीर ने परमसता को अनिर्वचनीय माना है। वाणी से अतीत एवं युक्ति प्रमाण का विषय न होने के कारण वह 'अकय्य' है। कबीर ने कहा कि परमसत्ता नानात्व में एक है, वह 'अस्ति' है। वह केवल अनुभूत सत्ता है। इसके बारे में कबीर 'पुष्य–गंध' के द्वारा संकेत करते हैं

''जाके मुंह माथा नाहीं, नाहीं रूप कुरूप।
पुहुप वासते पातरा, ऐसा तत्व अनूप।

कबीर ग्रंथावली

भारी कहौं त बहु डरौं हलका कहूँ तो झूठ।
मैं का जानौ राम कूं, नैन् कबहूँ न दीठ।

कबीर ग्रंथा।

अद्वैत वेदांत में प्रतिपादित 'ब्रह्य' की निर्गुणता एवं अव्यक्तत की झलक कबीर तत्व चिंतन में मिलती है। कबीर का विलक्षण परमतत्व कहीं कहीं इस्लाम के एकेश्वरवाद के समान प्रतीत होता है। कबीर का ब्रह्य स्वरूप प्रतिपादन की दृष्टि से औपनिषिदिक ब्रह्य योगियों के द्वैताद्वैत विलक्षण प्रकाश स्वरूप विवेचन, सूफियों के नूरवाद–क्षून्यवाद से प्रभावित हैं क्योंकि कबीर के ब्रह्यवाद में भावना मूलकता एवं बुद्धिमूलकता दोनो है।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कबीर–दर्शन में सोपाधिक ब्रह्य का भी वर्णन मिलता है। जब रामसत्रा त्रिगुणात्मक अर्थात् सत्व–रजस्–तम से युक्त होता है तो वही ब्रह्या, विष्णु एवं महेश का रूप धारण करता है। यह जीवात्मा भी ब्रह्य का उपाधिकयुक्त रूप है। व्यवहारिक जीवन में श्रवण–मनन एवं निदिध्यासन की दृष्टि से सोपाधिक ब्रह्य अधिक ग्राहय है। कबीर को तात्विक हष्टि से निरूपाधिक ब्रह्य ही प्रिय है।

मायाः कबीरदास का माया विचार शंकराचार्य के अद्वैतवाद से अनुप्राणित हैं। मायावाद में जगत् को सत–असत् से विलक्षण माना गया है। मायिक जगत् नश्वर होने के कारण सत् तो नहीं है, लेकिन असत् भी नहीं है। माया त्रिगुणात्मक है, परिणाम धारिणी है। माया यद्यपि मिथ्या है, तथापि सर्वव्यापी है, चंचल है तथापि त्रिकाल अबाधित नहीं है क्योकि सत् का ज्ञान हो जाने से उसका बाध हो जाता है। माया की वेदांत सम्मत दो शाक्तियाँ हैं आवरण शाक्ति तथा विक्षेप शक्ति। आवरण शाक्ति से माया वास्तविक स्वरूप को ढँक लेती है तो विक्षेप शक्ति से माया मिथ्या सृष्टि करती है। वास्तव में स्वप्नमय जगत् माया है। लेकिन वेदांत में इसे मिथ्या कहा गया है।

कबीर–दर्शन में माया अनेक रूपों में विवेचित है, विशेषकर भ्रम रूप में। इनका मानना है कि जैसे ही बुद्धि में भ्रम समाविष्ट होता है, वैसे ही अवस्तु में वस्तु का अध्यास होने लगता है। हमें भ्रम के कारण ही जगत् नाना रूपात्मक लगने लगता है। कबीर निरंजन से 'माया आघा शक्ति को उत्पन्न मानते हैं और सक्षम आद्या शक्ति से माया। इसी संयोग से ब्रह्या–विष्णु–महेश की अन्पत्ति हुई है, और किर इसी से सम्पूर्ण सृष्टि

''कहन सुनन कौ जिहि जग कीन्ही जग मुलांन सो किनहुंन चीन्हां।

सत रज तम थै कीन्हीं माया, आपण मांझै आप छिपाया।

कबीर ग्रंथावली, रमैणी–2

जड़–चेतन पदार्थों में आभास को कबीर मानव प्रपंञच कहते हुए माया की व्यापकता का परिचय देते हैं

''मन माया तो एक है, माया नहीं समाया।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तीनों लोक संसय परा, काहि कहुँ समझाय।।''

बीसक शब्द 105

जगत्: कबीर का जगत् सम्बन्धी विचार भी अद्वैत–वैदांत से प्रभावित है। कबीर भी वेदांत दर्शन के भाँति जगत् को ब्रह्म का परिणाम न मानकर जगत् को ब्रह्म का विवर्त मानते हैं। अद्वैत–दर्शन में ''ब्रह्म सत्यं जगत् मिथया'' कहा गया है। कबीर वाणी में भी जगत् को स्वप्नवत् मिथ्या कहा गया है, ब्रह्म को जगत् का अधिण्ठान कहा है। कबीर वाणी में अभिव्यक्त सृष्टि विकास–क्रम वेदांत के अनुरूप लगता है। शंकर ने जगत् को व्यावहारिक सत्ता में रखा है। जगत् व्यावहारिक दृष्टिकोण से पूर्णतः सत्य है। जगत् प्रतिभासिक सता की अपेक्षा अधिक सत्य है और पारमार्थिक सता के अपेक्षा कम सत्य है। जगत् को शंकर ने न पूर्णतः सत्य माना है और न भ्रम और स्वप्न की तरह मिथ्या माना है। शंकर ने जगत् का आधार ब्रह्म को माना है। कबीर ने भी जगत् को मिथ्या कहते हुए रहा है।

''थो संसार रैन का सपना कहि दीखा कही नाहिं दिखाया''

''संसार ऐसा सुपिन जैसा, जीव न सुपिन समांना।।

कबीर ग्रंथावली पद 245

कबीर ने कहा कि ब्रह्म स्वयं दर्पण है, और विश्व उवमें प्रतिबिम्बित है। अतः जगत् आभास मात्र है। यह आभास चिन्त–दर्पण या स्वरूप साक्षात्कार के न होने के कारण होता है।

''ज्यूं बिंबहि प्रतिबिंब समांना उदिक कुंभ बिगरांना।''

कबीर ग्रंथावली पद 179

कबीर ने कहा रि जगत का आदि और अंत दोनो ही अज्ञात है। इसलिए जगत् के रहस्य को केवल उसका स्रष्टा ही जान सकता है।

''बाजी को बाजीगर जानै, कै बाजीगर का चेरो।''

कबीर ग्रंथा पद 238

जगत् की रचना कब हुई, क्यों हुई? इन प्रश्नों को कबीर अगम्य रूप में ही छोड देते हैं। उनकी दृष्टि में जगत् सता व्यवहारात्मक है, पारमार्थिक नहीं। कबीर बीजक की प्रथम रमैणी में सृष्टि–क्रम का विवरण सांख्यमत के अनुसार दिया गया है।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कबीर–वाणी में संसार की क्षण्भंगुरता, निस्सारता सम्बन्धी अनेक साखिया–पद मिलते हैं।

''चलती चा की देखकर, दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में, साबित बचा न कोय।।''

जीवात्मा– आत्मा की परमार्थिक सता है, जबकि जीव की व्यवहारिक सत्ता है। जीव आत्मा का आभास मात्र है। जीवात्मा ब्रह्य का अंश है। कबीर का यह अंशांशि सम्बन्ध अद्वैत विचार के अनुकूल है। कबीर ने जीवात्मा के प्रतिपादन में गीता दर्शन कभी सहारा कबीर ने जीवात्मा के प्रतिपादन में गीता दर्शन काभि सहारा लिया है। वह अशोच्य, अदाह्य, अद्देध है। वह अनाम अरूप अज और अविनाशी है। माया के कारण द्वैत भासित होता है। वह स्वयं प्रकाशित होता है। परमार्थ चिंतन में जो आत्मा है, वहीं व्यवहार में जीव या जीवात्मा कहलाती है। जब वह जीवात्मा है, तब वह मायाच्छन्न है और तभी उसमें नाम–रूप का नानात्व होता है। ताप्पर्य है कि जब आत्मा या चैतन्यांश कत्तृव्य भोक्तृत्व रूप सोपाधिकता से जुड़ जाता है, तभी वह जीवात्मा कहलाती है। कबीर ने आत्मा के अंश–अंशी संबंध को लिया है। वे बूँद–समुद्र का उदाहरण देकर इसे समझाते हैं–

''बुंद समांनी समुंद मैं, सो कत हेरी जाई।
समुंद समांना बूंद मैं, सो कत खोज्या जाइ।।''

कबीर ग्रंथवाली, लांबि 7/3–4

कबीर का मानना है कि यह जीवत्मा मात्र राम का अंश है। वह न तो मनुष्य है, न देव है, न योगी न यति और अवधूत है, न माता–पुत्र है, न गृही–उदासी, न राजा न रंक है, न ब्राह्यण बढ़ई है, ने शेख–तपस्वी है, अर्थात् वह नित्य निर्विकार है

''ना इहु मानसु न हुई दे3। ना इहु जली कहावै सेउ।
ना इहु जोगी ना अवधूता । ना इहु माई न काहू पूता।
कहै कबीर इहु राम को अंसु। जस कागद पर मिटै न मंसु।

कबीर ग्रंथावली

अज्ञान में भूली जीवात्मा अपने स्वरूप को न पहचान कर उदास होती है, बंधनग्रस्त हो जाता है। जब तक जीव में ज्ञान का उदय नहीं होता है, तब तक वह स्वयं को वुद्धि से भिन्न नहीं समझता

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है। वस्तुतः जीव और ब्रह्य अभिन्न हैं अर्थात् जीव ब्रह्य का अंश है लेकिन अज्ञानता के कारण वह पहचान नहीं पाता है। कबीर ने कहा है

''काहे री नलनी तूं कुमिलां नी।
तेरे ही नालि सरोवर पानी।
कबीर ग्रंथावली, पद 64

इस प्रकार देखते हैं कि संत कबीर व्यवहार अनुभव तथा यथार्थ के त्रिवेणी हैं। ये न केवल कवि हैं अपितु श्रेष्ठ दार्शनिक भी हैं। इनका तत्व–चिंतन एक सम्पूण्र दर्शन के रूप में है, जो हमारे मस्तिष्क को प्रभावित किए बिना नहीं छोड़ता। कबीर–दर्शन का प्रभाव इतना व्यापक है कि जब भी हम वेदांत दर्शन, बौद्धदर्शन अथवा पाथपंथियों के सिद्धांत की चर्चा करते हैं तो कबीर–दर्शन का विराद् चित्रा भी अनायास मस्तिष्क में उभर जाता है। अतः आज के इप युग में कबीर के जीवन–दश्नन को अमल में लाने की महती आवश्यकता है।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मीरा कांत के नाटक काली बर्फ में चित्रित विस्थापन की समस्या

विजय सिंह

1958 में श्रीनगर में जन्मी मीरा कांत ने अपनी लेखनी से समाज के उपेक्षित और प्रताड़ित मनुष्यों की पीडा को वाणी देने का सफल प्रयास किया है। उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से एम. ए. हिन्दी तथा जामिया मिल्लिया इस्लामिया से पीएच. डी का शोध किया और आजकल राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एन. सी. ई आर टी), नई दिल्ली में सम्पादक के रूप में कार्यरन्त हैं। अभी तक उनके द्वारा रचित नाटक हैं–ईहामृग, नेपथ्य राग, भुवनेश्वर दर भुवनेश्वर, कन्धे पर बैठा था शाप / श्रूयते न तू दृश्यते, काली बर्फ, मेद्य प्रश्न, बहती व्यथा सतीसर, हुमा को उड जाने दो, अंत हाज़िर हो, उत्तर प्रश्न, पुनरपि दिव्या (नाट्य रूपांतरन), बाबू जी की थाली (नुक्कड नाटक)। इसके अतिरिक्त मीरा कांत ने कई उपन्यास, कहानी संग्रह, दो लम्बी कविताएँ, बाल साहित्य, शोध कार्य तथा अंग्रज़ी और अन्य भारतीय भाषाओं से हिन्दी में अनुवाद का

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कार्य भी किया है। मीरा कांत को 2008 में उत्तर प्रश्न नामक नाटक के लिए साहित्य कला परिषद, नई दिल्ली द्वारा मोहन राकेश सम्मान तथा ईहामृग नाटक के लिए 2003 में सेठ गोविन्ददास सम्मान जैसे कई सम्मानों से सम्मानित किया जा चुका है। मीरा कांत के नाटक काली बर्फ में आतंकवाद के कारण कश्मीर घाटी से पलायन करने वाले एक परिवार की कथा के माध्यम से विस्थापन की समस्या को दर्शाया गया है। काली बर्फ नाटक कंधे पर बैठा था शाप नामक नाट्य त्रयी में संकलित है। पूरे नाटक में विस्थपित परिवार के सदस्यों के मनों में बसी कश्मीर की यादों तथा घर लौटने की आस का मार्मिक चित्रण हुआ है।

परिवार के मुखिया हैं पांडित श्रीकंठ वौखलू, जिन्हें सभी प्यार से टाठा जी कहते हैं। उनके साथ परिवार में उनकी छोटी बेटी शारिका, बेटा शिबन तथा उनका अनाथ पोता गोशा हैं। टाठा जी का बड़ा बेटा तथा बहू कश्मीर में एक बम विस्फोट में मारे जा चुके हैं, शारिका का मंगेतर चमन भी घाटी में ही आतंकवादियों के हाथों मारा जा चुका है। घाटी से पलायन के कारण शिबन को एम. बी. बी. एस की पढाई छोडकर सपरिवार दिल्ली आना पडा और अब वह बेरोजगारी के कारण दिल्ली की गलियों में अखबार बेचता फिरता है। टाठा जी की बडी बेटी और दामाद भी घाटी से पलायन के बाद दिल्ली में ही हैं, पर वे टाठा जी के साथ नहीं रहते।

नाटक का प्रारम्भ दिल्ली के एक बडे मकान के छोटे से कमरे सें होता है, जहाँ टाठा जी का बचा हुआ परिवार जीवन यापन कर रहा है। यह मकान टाठा जी के किसी मित्र का है, जो स्वयं विदेश गया हुआ है और मकान का यह कमरा टाठा जी के परिवार को कुछ भमय के लिए रहने को दिया है। नाटककारा ने पात्रों के मन में बसी कश्मीर की यादों को तथा इन यादों से उभरने वाले दर्द को दर्शाने के लिए, प्रथम ही दृश्य के आरम्भ में अभिमंचन सम्बन्धी जानकारी में

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बताया है कि कमरे में टेपरिकार्डर पर एक कश्मीरी गीत चल रहा है और नाटक शुरू होते ही टाठा जी शारिका से टेपरिकार्डर बन्द करने को कहते हैं

टाठा जी : हाँ–हाँ कश्मीरी गीत है.. बन्द कर दे तू।
कश्मीरी गीत। हंह अब कया सुनूँ इन
गीतों को! इनका एक एक शब्द जहन में वही
पुराने हालात ताज़ा कर देता है। ऐसा लगता है...
आज भी सब आँखों के सामने से गुजर रहा है।

कंधे पर बैठा था शाप पृ. 95–96

आगे चलकर टाठा जी के मन का दर्द और अधिक स्पष्ट रूप से सामने आता है जब वे परेशानी के कारण दोनों मोज़े एक ही पैर में पहनते हैं और इस बात का ज्ञान होने पर इसे बुढापे का लक्षण बताकर टालना चाहते हैं। पर पाठकों को उनके हृदय की अवस्था से शारिका का यह स्वगत कथन अवगत कराता है।

शारिकाः (स्वगत) क्या सिर्फ बुढापे के लक्षण हैं ये? नहीं... सिर्फ बुढापा नहीं है ये। कया थे पंडित श्रीकंठ वौखलू। एक जिन्दादिल और खुशमिजाज इन्सान... सरकारी महकमे में पटवारी... सेबों के पुश्तैनी बागों के मालिक.... जिसने जिन्दगी को अपनी शर्तों पर जिया। आज इस परदेस से शहर में, इन अजनबी चार दीवारों में रह रहे हैं अपने बचे–खुचे परिवार के साथ... आह ये दिन भी देखने थे!

कंधे पर बैठा था शाप पृ. 98

मीरा कांत ने पात्रों के मन में उठ रहे भावों व विचारों को दर्शाने के लिए पात्रों के स्वगत कथनों का सहारा बड़े सटीक ढंग से लिया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने पात्रों के मन में चल रहे द्वन्द्व को व्यंजित करने के लिए पूरे नाटक में कई स्थानों पर अधूरी शैली का

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भीर प्रयोग किया है

राज : रोते हुए क्या सोचता है इन्सान और होता क्या है! अपनी सारी जमापूँजी लगाकर वह नया मकान बनाया था.... रूपा के कुछ जेवर भी उसी में... (आँसू पोंछता है)..........

वो डिठौना ...... वह भी छूट गया टाठा जी.... वहीं मकान पर लगा–लगा.. वहीं घूट गया।

कंधे पर बैठा था शाप पृ. 132

"काली बर्फ" नाटक एक पूर्ण कथा के रूप में न चलकर अंशों में आगे बढता है। पूरा नाटक पंद्रह दृश्यों में बंटा हुआ है, जिन में से सात दृश्य तो फ्लैश बैक के ही हैं। फ्लैश बैक पात्रों को उनके अतीत से जोडते हैं तथा उनकी व्यक्तिगत कथाओं के धागों से पूरे नाटक को विस्थापन की समस्या के एक बड़े कैनवस में परिवर्तित कर देते हैं, जिस कैनवस पर पाठक विस्थापन से पहले और बाद के खिंचे चित्रों को स्पष्ट रूप से देख पाता है। नाटक के पात्र विस्थापन के बाद भी कश्मीर से जुड़ी अपनी यादों को दिल से निकाल नहीं पाए हैं और नई जगह की नई परिस्थितियों और माहौल से दुखी हैं। ये पात्र अपने वर्तमान को अपने अतीत के साथ तोलते रहते हैं।

शिबन: ....

....

कैसा शहर है किसी की बबसी से कोई लेना देना नहीं है...
इन्सान को इन्सान नहीं समझते।
अरे .... अरे वो .... (शारिका से, जोर से) जानती है....
......
आज डॉक्टर होता .... अगर..... अगर .... हालत ठीक
रहते ...... अब सुबह – सुबह घर–घर जाकर
अखबार बाँटता हूँ।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कंधे पर बैठा था शाप पृ. 117

नाटककार नें नाटक में कश्मीरीयत के भाव को भी दर्शाने का प्रयास किया है। एक ओर डॉ. नसीर राज को घाटी से न जाने और धाटी में ही अपने मित्रों के साथ रहने को कहते हैं, तो दूसरी ओर मुश्ताक हालात को समझता हुआ खुद राज को सुबह की ठंड में बस स्टैड तक पहुँचा के आता है।

मीरा कांत ने "काली बर्फ" नाटक में बर्फ, चिनार कहवा, रोठ, खिचड़ी अमावस तथा यक्ष और उसकी जवाहरातो वाली टोपी जैसे प्रसंग डालकर पूरे नाटक को कश्मीरी सभ्यता के रंग में रंग दिया है। छटे दृश्य के आरम्भ में वह कश्मीरी सभ्यता और एक कश्मीरी घर के चित्र को कुछ इस प्रकार व्यक्त करती हैः–

(श्रीनगर में राज का घर। उच्च मध्यवर्गीय मकान का एक कमरा, जहाँ की सजावट व रख–रखाव ने कोने–कोने में कश्मीर की खुशबू को छितरा रखा है। वगुव (मोट्टी चटाई) पर कश्मीरी कालीन, तख्त पर गब्बे, पैरों को गर्म रखने के लिए नम्दा है। कांगड़ी भी दिखाई दे रही है। अखरोट की लकड़ी के सुन्दर काम का सोफा।...... ....)

कंधे पर बैठा था शाप पृ. 120

नाटक के पात्रों के चरित्र स्वभाविक रूप से उभर कर पाठकों के समक्ष आते हैं पर नाटक प्रारम्भ होने से पूर्व ही नाटकाकारा स्वंय ही पाठकों को इन पात्रों के चरित्रों से अवगत करवा देती हैः–

पंडित श्रीकंठ वौखलू : आयु लगभग 65 वर्ष। सेवानिवृत्त सरकारी अधिकारी। घर के मुखिया जिन्हें सब प्यार से टाठ जी कहते हैं। शान्त, उदार, कोमल स्वभाव।

शारिकाः आयु लगभग 21 वर्ष। टाठा जी की छोटी बेटी। संवेदनशील व आशावादी व्यक्तित्व।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शिवनः आयु लगभग 25 वर्ष। टाठा जी का बेटा। बेरोज़गार स्वभाव में तल्खी।

कंधे पर बैठा था शाप पृ. 93

पात्रों के चरित्र–चित्रण के अतिरिक्त देश–काल का भी नाटक में पूर्ण निर्वह है पर मीरा कांत अपने पाठकों को देश–काल संबंधी जानकारी भी पहले ही दे देती हैं:

देश–काल

आतंकवाद के कारण श्रीनगर से विस्थापन के बाद आज के दिल्ली शहर की पृष्ठभूमि और अतीत की स्मृतियों में छाया श्रीनगर का भौगोलिक–सांस्कृतिक परिवेश।

कंधे पर बैठा था शाप पृ. 94

अभिमंचन संबंधी संकेत भी नाटक में यत्र–पत्र देखने को मिलते हैं। प्रकाश योजना तथा पाशर्व संगीत संबंधी संकेत यथा स्थान नाटक को बल देते चलते हैं:

प्रकाश कमरे की स्थितियों से परिचित

कराता है......।

कंधे पर बैठा था शाप पृ. 95

पार्श्व से कविता की पंक्तियाँ उभरती हैं

कंधे पर बैठा था शाप पृ. 162

अन्य नाटकीय तत्वों तथा रंगमंचीयता संबंधी संकेतों के अतिरिक्त नाटक में उद्देश्य भी उतनी ही प्रखर अभिव्यक्ति लिए हुए है जितना कि कोई और तत्व। नाटक का हर पात्र समाज के किसी न किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करता दिखाई देता है। पंडित श्रीकंठ वौखलू उन लोगों के प्रतिनिधि हैं जो घाटी के हालातों में अपना लगभग सब कुछ खोकर भी घाटी वापस लौटने की आस बाँधे हुए हैं। चमन आतंकावाद को मुल्क और कौम की तरक्की में रुकावट

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मानने वालों तथा आतंकवाद के खिलाफ आवाज़ उठाने वालों का प्रतिनिधि बनकर उभरा है।

मीरा कांत ने नाटक में पात्रों को उनकी यादों से जोड़ने के लिए चिनार के एक तने को प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है। वह स्वंय कहती हैं।

मंच पर रखा चिनार का तना प्रतीक है अतीत की स्मृतियों कां। नाटक में जब कभी किसी पात्र को अतीत की स्मृतियाँ घेरने लगेंगी वह पात्र इस चिनार के तने पर बैठेगा। एक मायने में चिनार का यह तना अतीत की स्मृतियों का गवाक्ष है।

कंधे पर बैठा था शाप पृ. 99

नाटक का हर पात्र अतीत की स्मृतियों से बंधा है और एक अजनबी शहर की परिस्थितियों में वापिस घाटी अपने घर लौटने की उम्मीद बाँधे हुए जी रहा है। नाटक के अंत में शारिका अपनी बड़ी बहन रूपा से कहती है कि वह कई सालों से एक सपना देखती है जिसमें वह एक घाटी में कई मेमने देखती है। घाटी के बर्फ से ढके पहाडों का रंग सफेद से स्याह और फिर काला होता देखती है। मेमनों को दो अलग रास्तों पे जाता देखती है। फिर वह देखती है कि बर्फ फिर सफेद दिखाई देती है। उसके मन में मेमनों के वापिस लौटने की उम्मीद जगती है और वह चिल्लाती है कि अभी काली बर्फ नहीं गिरी।

शारिका का यह सपना हर उस विस्थापित कश्मीरी के दिल की आवाज़ है जो यह समझता है कि अभी काली बर्फ नहीं गिरी अर्थात कोई अनहोने बात नहीं हुई और घर वापिस लौटने की उम्मीद अभी नाउन्मीदी में नहीं बदली। काली बर्फ नामक नाटक में एक और तथ्य की ओर भी इंगित किया गया है कि कश्मीर में आतंकवाद के कारण केवल हिन्दू परिवारों को ही घाटी से पलायन नहीं करना पड़ा

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अपितु मुसलमान परिवारों को भी इसकी वजह से कई मुसीबतों का सामना करना पडा तथा डॉ. नसरी के परिवार जैसे कई परिवारों को घाटी से पलायन भी करना पड़ा।

साशंशतः कहा जा सकता है कि मीरा कांत द्वारा रचित नाटक ''काली बर्फ'' विस्थापित कश्मीरियों की यादों का तथा उन के मन के पल रही घर वापसी की उम्मदी का द्योतक है तथा विस्थापित जीवन जीने वाले लोगों के जीवन संघर्ष और मानसिक पीडाओं का स्फुट दस्तावेज है।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिंदी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय
श्रीनगर - 190006

Printed at Mehak Press # 09419063159 ISSN 0975-6663

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh